Feb 72

255

नव-संन्यास अंतर्राष्ट्रीय के बढ़ते चरण

मा आनन्द मधु एवं स्वामी चैतन्य भारती सहित १५ देशी-विदेशी संन्यासियों की एक कीर्त्तन-मंडली भगवान श्री रजनीश के दिव्य आलोक को चारों ओर परिव्याप्त करने के लिये अपने देश में अभी तक गुजरात प्रदेश, राजस्थान, हैदराबाद में भ्रमण करने के पश्चात् मध्यप्रदेश में पधारी है। मध्यप्रदेश के कण-कण में भगवान श्री का सिंहनाद परिव्याप्त है। उसे आलोड़ित करने हेतु यह संन्यास-मंडली शीघ्र ही आपके नगर में भी प्रवेश करेगी। आपसे अपेक्षा है—सक्रिय भाग लेकर सहयोग प्रदान करने की। मध्यप्रदेश में यह मंडली—इन्दौर, भोपाल, नीमच, रतलाम, उज्जैन, मंदसौर रायपुर, दुर्ग, छिंदवाड़ा, सिवनी, जबलपुर, रीवा, पन्ना, खुजराहो, छतरपुर होती हुई निम्नांकित तिथियों में आपके नगर में पधार रही है।

मध्यप्रदेश में संन्यास-मंडली का निर्धारित कार्यक्रम इस प्रकार है :

स्थान	दिनांक	संयोजक
दमोह	२२, २३ फरवरी	१. श्री सुरेशचंद जी जैन, जैन हाई स्कूल २. श्रीमती तारादेवी शर्मा. C/o डा. अर्जुनदेव शर्मा, स्टेशन रोड, दमोह
सागर	२४, २५, २६ फर०	स्वामी अमित चैतन्य, साधना साड़ी केन्द्र, परकोटा, सागर
गाडरवारा	२८, २९ फर. व १ मार्च	साधु योग प्रफुल्ल, C/o श्री खूबचंद हजारीलाल, क्लाथ मर्चेंट, गाडरवारा
पिपरिया	२, ३, ४, ५, ६ मार्च	साधु प्रेमतीर्थ भारती (श्री गुलाबचंद जी जैन) 'प्रेमनीड़' पिपरिया
होशंगाबाद	८, ९, १० मार्च	मा योग भक्ति, C/o श्री आर. के. फौजदार, बस सर्विस, होशंगाबाद
झाँसी	१३,१४,१५,१६ मार्च	———
ग्वालियर	१८,१९,२०,२१ मार्च	श्री विमलकिशोर, १३।२८ बिरलानगर, ग्वालियर

शेष कवर पृष्ठ ३ पर ▶

भगवान श्री रजनीश की सृजनात्मक
जीवन दृष्टि की मासिक
संकलन पत्रिका

चक्र

फरवरी १९७२

वर्ष – ३ अंक – १५ : १६

मूल्य एक प्रति : १-०० रु.
,, वार्षिक : १२-०० रु.

युक्रांद

फरवरी
१९७२

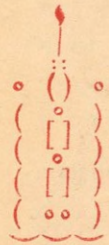

मानसेवी--

सम्पादक :
अरविन्द कुमार

उप-सम्पादक :
आलोक पाण्डे
'आकुल' राजेन्द्र

सौ० सम्पादक :
कनु शेठ

व्यवस्थापक :
स्वामी धर्म सरस्वती

अनुक्रमणिका

पृष्ठ :

१ **जीवनासक्ति : एक मूर्च्छा** — बोध कथाओं से

४ **'जीवन ही है प्रभु'** (चतुर्थ प्रवचन) — संकलन : मा योग मीरा, जूनागढ़

२५ **ध्यान से असाध्य साध्य बना** (३० वर्ष पुरानी व्याधि से मुक्ति) — लाल प्रताप

२८ **ज्योतिष-गणना** (एक भेंट वार्ता गत अंक से आगे) — प्रस्तुतकर्ता : स्वामी योग चिन्मय, बम्बई

४१ **स्वर्ग की ओर उड़ान** (माथेरान साधना-शिविर एक रिपोर्ट) — साधु आनन्द ब्रह्मदत्त

५० **कृष्ण-चेतना** (एक प्रश्नोत्तर वार्ता से) — संकलन : मा योग मीरा जूनागढ़

गीत : काव्य

२ **चेतना** — स्वामी अमृत परमहंस

३ **छाया है दरपन में** — 'आकुल' राजेन्द्र

४० **नर्मदा का उपालम्भ** — उर्मिला, एम० ए०, जबलपुर

४९ **प्रभु मुझको राह दिखावो** — स्वामी अगेह भारती, जबलपुर

नोट :

कुछ महत्वपूर्ण सूचनाएं कृपया पृष्ठ ६२ पर देखिए ।

स्वत्वाधिकारी प्रकाशक : अरविन्द कुमार, ७९०, राइट–टाउन, जबलपुर.
मुद्रण : अशेष प्रिंटर्स, ७८१, राइट-टाउन, जबलपुर.

जीवनासक्ति : एक मूर्छा

(भगवान श्री की बोध कथाओं से)

मैंने सुना है कि क्राइस्ट ने लोगों को कब्रों से उठाया और उन्हें जीवन दिया . जो स्वयं को शरीर ही जानता है, वह कब्र में ही है . शरीर के ऊपर आत्मा को जानकर ही कोई कब्र से उठता और जीवित होता है .

०
०

मिश्र के किसी प्राचीन आश्रम में किसी साधु की मृत्यु हो गई थी . उसे भूमि-गर्भ में निर्मित विशाल मुर्दा-घर में उतार दिया गया . लेकिन सौभाग्य से या दुर्भाग्य से वह मरा नहीं और कुछ समय बाद मृतकों की उस बस्ती में होश में आ गया . उसकी मानसिक पीड़ा और संताप की कल्पना करना भी कठिन है . उस दुर्गन्ध और मृत्यु से भरी अंधेरी बस्ती में जहां सैकड़ों मुर्दे सड़ रहे थे, वह जीवित था . बाहर पहुंचने का कोई मार्ग नहीं, आवाज पहुंच सके इस तक की कोई सम्भावना नहीं. उसने क्या किया होगा ? क्या वह भूखा और प्यासा मर गया ? क्या उसने उस मृत-जीवन का मोह छोड़कर स्वयं को बचाने की कोशिश नहीं की ? नहीं, मित्र, जीवनासक्ति बहुत गहरी और घनी है . वह साधु वहीं जीने लगा . कीड़े-मकोड़े उसका भोजन बन गये . मृत्युगृह की दीवारों से गन्दा पानी वह पी लेता और कीड़ों पर वह निर्वाह करता . मुर्दों के कपड़े निकालकर उसने अपने सोने और पहनने की व्यवस्था कर ली थी . और, वह निरन्तर अपने किसी साथी की मृत्यु के लिए प्रार्थना करता रहता, क्योंकि किसी के मरने पर ही उस अंध-गृह के द्वार खुल सकते थे . वर्ष पर वर्ष बीते . उसे तो समय का भी पता नहीं पड़ता था . फिर एक दिन कोई मरा तो द्वार खुले और लोगों ने उसे जीवित पाया . उसकी दाढ़ी सफेद हो गई थी और जमीन को छूती थी और जब लोग उसे बाहर निकाल रहे थे तब वह मुर्दों से उतारे गये कपड़े और उनके कपड़ों में से इकट्ठे किये गये रुपये-पैसे साथ ले लेना नहीं भूला था .

यह अतीत में घटी कोई घटना है या कि स्वयं हमारे जीवन का प्रतिबिम्ब ? क्या यह घटना हम सबके जीवन में अभी और यहीं नहीं घट रही है ? मैं देखता हूं तो पाता हूं कि हम में से प्रत्येक एक दूसरे की मृत्यु के लिए प्रार्थना कर

रहा है और हम सब मुर्दों की बस्ती में हैं, जहां से बाहर निकलने के लिये कोई द्वार नहीं मालूम होता है और हम भी दूसरे मुर्दों के कपड़े और पैसे छीन रहे हैं और हमारा निर्वाह भी कीड़े-मकोड़ों पर ही है . और यह सब हो रहा है अंधी जीवनासक्ति, जीवेषणा के कारण .

०

अंध जीवेषणा से परिचालित व्यक्ति वास्तविक जीवन को अनुभव नहीं कर पाता . उसके धुन्ध से जो मुक्त होता है, वही जीवन को जानता है . उससे प्रभावित चेतना कब्र में ही है, ऐसा ही जानना .

●

चेतना

—स्वामी अमृत परमहंस

पड़ा था—मूर्छित, निद्रित—शैया पर कांटों की
एक-एक कांटा अपने ही हाथों से
निकाल-निकालकर, संभाल-संभालकर
बिस्तर पर अपने ही रख रहा था .
अचानक, अनायास ही किसी ने—
झझोड़ दिया, झकझोर दिया मुझको .
पुकारा विनम्रता से—उठो ! जागो !!
निमंत्रण है—अलौकिक लोक का—
जहां पर ··· ··· कोई दुख नहीं, पीड़ा नहीं .

आंखें मलता, पीड़ित शरीर—
कांटों से लथपथ, कराहती आवाज में
झुंझलाकर पूछ बैठा—कौन हो ?
चेतना ··· ··· ··· ···

सजगता—
जागरूकता—
अमूर्छा—
कई नाम हैं मेरे.
पहचाना तुमने ?

●

छाया है दरपन में

—'आकुल' राजेन्द्र

प्रभु की प्यास जगे जब मन में
क्या माया क्या
ममता जग की
छाया है दरपन में !

निपट अनारी जगत खिलारी
नित-नित झूठी देह संवारी
माटी को माटी से सजाये—
कितनी पागल दुनिया सारी !
'उसकी' लगन लगे जब उर में
चित न लगे मधुबन में !
··· छाया है दरपन में !

जितने चाहे मीत बना ले
जितनी चाहे प्रीत बढ़ा ले
छूटेंगे सब सजन-संघाती—
'प्रभु-प्रियतम' से प्रीत लगा ले
जब तक जग का मोह न छूटे
चित ये रहे उलझन में !
··· छाया है दरपन में !

आत्म अमिट है अलख अनश्वर
इससे संयत है उर-अंतर
अभ्यंतर यात्रा पहुंचाती—
आत्मा परमात्मा हो जहां पर
वह आनंद कहां इस जग में
जो 'उसके' दरसन में !
··· छाया है दरपन में !

'जीवन ही है प्रभु'

जूनागढ़ साधना शिविर में भगवान श्री द्वारा दिया गया चतुर्थ प्रवचन

संकलन : मा योग मीरा, जूनागढ़

" जीवन ही है प्रभु " इस संबंध में और बहुत से प्रश्न मित्रों ने पूछे हैं . एक मित्र ने पूछा है : बुराई को मिटाने के लिये, अशुभ को मिटाने के लिए, पाप को मिटाने के लिये विधायक मार्ग क्या है ? 'पॉजीटिव' रास्ता क्या है ? क्या ध्यान और आत्म-लीनता में जाने से बुराई मिट सकेगी ? ध्यान और आत्म-लीनता तो एक तरह का पलायन, 'एस्केप' है—जिंदगी से भागना है . तो ऐसा कोई मार्ग—विधायक, सृजनात्मक—जो भागना न सिखाता हो, जीना सिखाता हो—उस संबंध में कुछ कहें .

पहली बात तो यह कि ध्यान पलायन नहीं है . और आत्म-लीनता पलायन नहीं हैं; बल्कि आत्मा से बचके जो और सब तरफ भाग रहे हैं, वे पलायन में हैं . जो मेरे निकटतम है, उसे जानने से बचने की कोशिश 'एस्केप' है . हम अपने से ही बचने के लिए भाग रहे हैं . और मजा यह है कि भागने वालों की यह भीड़, अगर कोई अपने को जानने जाता है, तो उससे कहते हैं—तुम जिंदगी से भागते हो . जिंदगी अपने अतिरिक्त और कहां से प्रारंभ हो सकती है ? जिंदगी का पहला कदम तो आत्म-ज्ञान ही होगा . मेरी जिंदगी दूसरे से शुरू नहीं हो सकती, मेरी जिंदगी मुझसे शुरू होती है . गंगा निकलेगी तो गंगोत्री से, वह किसी और नदी के उद्गम से नहीं निकल सकती; उसे गंगोत्री से ही निकलना होगा . मेरी जिंदगी मेरे भीतर से बाहर की तरफ जायगी . मेरी जिंदगी मुझसे बहेगी और फैलेगी . और अगर मैं अपने को ही जानने से वंचित रह जाता हूं, तो मै जिंदगी को जानने से भी वंचित रह जाऊंगा; इसलिये जो लोग यह कहते हैं कि आत्म-ज्ञान की दिशा में जाने वाले लोग 'एस्केपिस्ट' हैं, पलायनवादी हैं—वे बिलकुल ही गलत बात कहते हैं . असल में पलायनवादी हम सब हैं, जो आत्मा से बचने के लिये और न मालूम कहां-कहां जा रहे हैं . कोई शराब खोज रहा है कि

अपने को भूल जाय; कोई संगीत खोज रहा हैं कि अपनी याद न आये; कोई क्रिकेट का मेच देख रहा है; कोई हाकी-फुटवाल का मेच देख रहा है; कोई सेक्स खोज रहा है; कोई सिनेमा खोज रहा है; कोई मित्रों को खोज रहा है; कोई जुए को खोज रहा है; कोई धंधे को खोज रहा; कोई राजनीति को खोज रहा है—ताकि अपना पता न लगे, किसी भांति हम अपने को भूले हुए जी लें . इसलिए अकेला होना बहुत कठिन हो जाता है . अगर आदमी अकेला हो जाय तो उसी अखबार को फिर से पढ़ने लगता है, जिसे दो बार पहले भी पढ़ चुका है . अकेला हो तो रेडियो खोल लेता है; अकेला हो तो उन्हीं बातों को करने लगता है, जिन्हें जिंदगी भर से न मालूम कितनी बार कर चुका है—जिन्हें करने से कुछ मतलब नहीं .

आदमी अकेले होने से डरता है कि अपना आमना-सामना न हो जाय . जितने हम अपने से डरते हैं उतना हम किसी से भी नहीं डरते . और जितने हम अपने से नाराज होते हैं और अपने से घृणा करते हैं उतनी घृणा हम किसी से भी नहीं करते . अगर मैं एक घंटा अकेला छूट जाऊं, तो मैं लोगों से कहता हूं कि घंटे भर अकेला था, बहुत ऊब गया . इसका क्या मतलब ? इसका मलतब है, घंटे भर अपने साथ रहना भी उबाने वाला है . अपने साथ ! और अपने साथ ही जब मैं घंटे भर रहके ऊब जाता हूं, तो किसके साथ, कितनी देर रह पाऊंगा और ऊब न जाऊंगा ? और बहुत मजे की बात है कि आप भी अकेले में ऊब जाते हैं अपने साथ, मैं भी ऊब जाता हूं अकेले में अपने साथ और हम दोनों मिलके एक दूसरे की ऊब दूर करने की कोशिश करते हैं . दोनों ऊबे हुए हैं . अपने से ही ऊबे हुए, एक दूसरे की ऊब दूर करने की कोशिश में लगे हैं . जैसे दो भिखारी रास्ते पर मिल गये हों और दोनों ने अपने–अपने भिक्षा-पात्र एक दूसरे के सामने कर दिये हों कि कुछ मिल जाय . वे दोनों ही भीख मांगने निकले हैं . पत्नी पति के साथ रहकर सोचती है कि साथ आनन्द मिल जायगा . पति पत्नी के साथ सोचता है, आनन्द मिल जायगा . और दोनों अकेले रह कर दुःखी हो जाते हैं . जब दोनों अकेले होकर दुःखी हैं, तो दोनों मिल के दुगने दुःखी हो सकते हैं और कुछ भी नहीं हो सकता (**हास्य और तालियां**); क्योंकि मैं वही दे सकता हूं, जो मेरे पास है . लेकिन हम अपने से भागे हुए लोग हैं . लेकिन हमारी भीड़ है और भीड़ को एक सुविधा है कि वह जो कहे वह मान्य प्रतीत होने लगे . सारी भीड़ भागी हुई है . इसलिए, जो अपनी तरफ लौट रहा हो, लगता है, 'एस्केप' कर रहा है — पलायन कर रहा है — जिंदगी से भाग रहा है .

सच तो यह है कि जिंदगी अगर खोजनी हो तो पहले तो अपने पर ही आना होगा—वहीं से यात्रा शुरू हो सकती है जीवन के आनंद की . और जब मैं कहता हूं, जीवन ही प्रभु है तो इसका यह मतलब नहीं है कि मैं अपने को छोड़के जो है, वह जीवन है . मेरा जीवन मुझसे ही शुरू होता है . और जब मेरा जीवन बढ़ेगा तो धीरे-धीरे मेरा 'मैं' ही बढ़ेगा, फैलेगा—यह वृक्ष मुझ में समा जायेंगे और लोग भी मुझ में समा जायेंगे, चांद-तारे भी मुझ में समा जायेंगे . जितनी बड़ी यह मेरी चेतना फैलती चली जायगी उतना ही बड़ा आनंद, उतने ही बड़े जीवन को मैं उपलब्ध होता चला जाऊंगा . लेकिन, जिसे फैलना हो उसका पता तो होना चाहिए, वह कौन हूं मैं ? लेकिन, हम कहते हैं कि नहीं, यह तो जिन्दगी से भागना हो जायगा .

मैंने सुना है : एक आदमी की शादी हुई, तो वह जिंदगी में रोज ही शराब पीता रहा था . शादी के बाद भी दो वर्ष तक शराब पीता रहा . रोज ही पीता . पत्नी को ख्याल ही न आया . वह तो कोई कभी-कभी शराब पीता है तो पता चलता है; पर वह तो रोज ही पीता था . पत्नी ने पहले दिन से ही उसके मुंह में वही बास देखी थी . वह समझी इसी की बास होगी . रोज वही चलता था . एक दिन उसने शराब न पी और वह घर आया, तो पत्नी को बड़ा गड़बड़ मालूम पड़ा . रोज के हिसाब से गड़बड़ था . उसने कहा—"क्या बात है ? क्या आज शराब पीकर आ गये हो ? हाथ-पैर लड़खड़ाते हैं ." उस आदमी ने कहा— "देवी, मैं रोज पीकर आता रहा हूं, आज ही नहीं पी यह गलती हो गई . मुझे खुद ही अपने हाथ-पैर गड़बड़ मालूम पड़ रहे हैं ." वह रोज पीकर आता था तो एक व्यवस्था थी—एक ढंग था—एक आदत थी—एक जिंदगी का अपना रूप था . एक दिन छोड़ दी है तो गड़बड़ हो गई .

हम सारे लोग भी जिंदगी से भागे हुए लोग हैं . और हमारे बीच में जब कभी कोई एक जिंदगी से लौटता है, तो हम कहते हैं—"कहाँ जा रहे हो जिंदगी को छोड़के ?" और हम सब जिंदगी से भागे हुए लोग हैं . जिसे हम जिंदगी कह रहे हैं, वह जिंदगी नहीं है . अगर वही जिंदगी होती, तो हमारी आंखें आनंद से भर गईं होतीं . अगर वही जिंदगी होती, तो किसी मंदिर में हम परमात्मा को खोजने न गये होते; हमें जिंदगी में वो मिल गया होता . अगर वही जिंदगी होती, तो हम पूछते ना, कि शांति का रास्ता क्या है—आनंद का रास्ता क्या है, वह हमने पा लिया होता . अगर वही जिन्दगी होती तो ईश्वर के सम्बन्ध में हम बात न करते; क्योंकि ईश्वर हमें मिल गया होता . लेकिन नहीं कुछ हमें मिला—न कोई सौन्दर्य, न कोई सत्य, न कोई

संगीत; न जीवन में कोई रस है, न कोई आनंद है . लेकिन फिर भी इसको हम कहते हैं जिंदगी ! अगर यही जिन्दगी है, तो फिर मौत क्या होगी ? सिर्फ श्वास लेने का नाम जिंदगी है ? सिर्फ रोज सुबह उठ आने का नाम जिंदगी है ? सांझ सो जाने का नाम जिंदगी है ? रोज खाना पचा लेने का और खाने को शरीर के बाहर फेंक देने का नाम जिंदगी है ? अगर यही जिंदगी है तब तो ठीक है . लेकिन इतनी-सी जिंदगी से कोई राजी नहीं है . जिंदगी में और फूलों की अपेक्षा है . वे कभी खिलते हुए मालूम नहीं पड़ते हैं; लेकिन फिर भी हमें शक नहीं आता है . शक न आने का कारण यह है कि आस-पास हमारे जैसे ही लोग हैं . शक का कोई सवाल नहीं है . जैसे चारों तरफ लोग जी रहे हैं वैसे ही हम जी रहे हैं . जैसे सारे लोग जी रहे हैं, वही जिंदगी का ढंग मालूम पड़ता है . इसलिए अक्सर ऐसा हुआ है कि हमारे बीच, जो आदमी जिंदगी की तरफ गया है, वह हमें उल्टा मालूम पड़ता है कि हम से उल्टा जा रहा है . कोई सुकरात, कि कोई कृष्ण या कोई बुद्ध, हमें उल्टा मालूम पड़ता है . हमारी जिंदगी छोड़कर कहां जा रहे हो ! हम जिन्दा रह रहे हैं, तुम भाग कहां रहे हो ? अगर हम जिन्दा हैं और यही जिंदगी है, तो मैं कहूंगा कि वह भागने वाले ही ठीक हैं . वे हम से वृहत्तर जिंदगी को उपलब्ध हो जाते हैं . कहां है बुद्ध की शांति हमारी जिंदगी में ? और कहां है कृष्ण का आनंद ? कहां है लाओत्से का रस ? हमारी जिंदगी में नहीं है .

लाओत्से की जिंदगी में एक बहुत अद्‌भुत घटना है . लाओत्से एक नदी के किनारे बैठकर मछली पकड़ रहा है . जाल डाल दिया है, बैठा हुआ है . उस देश के राजा ने, चीन के सम्राट ने लाओत्से की खोज के लिए कुछ लोग भेजे . और उनसे कहा कि लाओत्से कहीं मिले तो उसे पकड़ लाओ . हमने सुना है कि वह बहुत बड़ा बुद्धिमान आदमी है . और हमने सुना है कि उसने जिंदगी का राज पा लिया है . तो हम उसे देश का प्रधान मंत्री बनाना चाहते हैं, ताकि वह सारे मुल्क को जिंदगी का राज बता दे . पहले तो पता लगाना मुश्किल हुआ; क्योंकि लाओत्से कभी एक जगह टिकता ही न था . सिर्फ मरे हुए टिकते हैं जिन्दा तो बहते चले जाते हैं, बढ़ते चले जाते हैं . मरे हुओं को जहां छोड़ दो वहीं टिके रहते हैं . तो लाओत्से का कोई ठिकाना न था . जिस गांव में वे गये, लोगों ने कहा—"हां, लाओत्से था, लेकिन लाओत्से तो हवा की तरह है, आया और गया . वह किसी और गांव में होगा ." बमुश्किल उस नदी के किनारे उन लोगों ने उसे पकड़ लिया . वह मछलियों को पकड़ने के लिए जाल डालकर चुपचाप बैठा था . उन्होंने जाकर कहा—"लाओत्से क्या पागलपन कर रहे हो ? फेंको इस जाल को, देश का सम्राट तुम्हें प्रधान मन्त्री बनाने को उत्सुक है ." लाओत्से ने गौर से उन्हें देखा और

उनसे कहा कि सुनो एक बात . मैंने सुना है कि तुम्हारे सम्राट के महल में एक सोने का कछुआ है . एक कछुए के ऊपर सोने की पर्त चढ़ा दी गई है . उन्होंने कहा—"हां है . वो बहुत प्राचीन है . हजारों साल से, बाप-दादों से चला आ रहा है . उसकी पूजा होती है . उसे सिंहासन पर बिठाया है . उसके आसपास लाखों के हीरे-जवाहरात जड़े हैं . " लाओत्से ने कहा—"वही मैं पूछता हूं, है न ऐसा कछुआ ?" उन्होंने कहा—"हां, ऐसा कछुआ है ." पास में एक कछुआ पड़ा हुआ था, रेत में लोट रहा था, कीचड़ में खेल रहा था . लाओत्से ने कहा—"सुनो मुझसे, अगर तुम इस कछुए से कहो कि हम तुम्हें सोने की वर्क चढ़ाकर सिंहासन पर बिठा देंगे, तो यह वहां जाना पसंद करेगा या मिट्टी में ही रेंगता रहेगा ?" उन लोगों ने कहा कि पागल होगा अगर यह वहां जाना पसंद करेगा; क्योंकि वहां सिंहासन पर बिना मरे कोई बैठ ही नहीं सकता—वहां मर जाना पड़ेगा, तभी सोना चढ़ेगा ऊपर . तो लाओत्से ने कहा कि हम भी यहीं ठीक है; हम भी सिंहासन पर नहीं बैठते . क्षमा करो, वापिस लौट जाओ . उन्होंने कहा : "तुम पागल हो गये हो ? जिंदगी को छोड़ते हो ! प्रधान मंत्री का मौका मिल रहा है ." उसने कहा : "हम पूरी तरह जिन्दा हैं, हम जरा भी कम जिन्दा नहीं है . हम पूरी जिंदगी का मजा ले रहे हैं . और अपने प्रधान मंत्रियों से, अपने सम्राट से कह देना, अगर जिन्दगी को पाना हो, तो लाओत्से के पास आ जायं . और लाओत्से को जिस दिन मरना होगा, उनके पास आ जायगा ." उसमें से एक ने कहा : " 'एस्केपिस्ट' मालूम होते हो, पलायनवादी मालूम होते हो . कहां इतना बड़ा मौका मिल रहा है, उसे छोड़कर भाग रहे हो ?" लाओत्से ने कहा कि तुम यह कहते हो और अगर मैं जाऊंगा तो यह कछुआ मुझ पर हंसेगा, यह मछलियां मुझ पर हंसेगी, हवाएं मुझ पर हंसेंगी, यह वृक्ष मुझ पर हंसेंगे, कि फंस गया पागल; जिन्दगी को छोड़कर कहां जा रहे हो ? जिन्दगी कहां है?

यह ठीक से हम समझ लें तो पलायन क्या है, यह भी समझ में आ जाय . जिंदगी कहां है ? जहां हम जी रहे हैं, वहां जिंदगी है ? नहीं, हमने बहुत गहरी भूल कर ली है—हमने जीवित रहने के रास्तों को जिंदगी समझ लिया है . हमने आजीविका की व्यवस्था को जिंदगी समझ लिया है . हम रोटी कमा लेते हैं, मकान बना लेते हैं, पत्नी ले आते हैं, घर बसा लेते हैं, बच्चे पैदा कर लेते हैं तो हम सोचते हैं, जिन्दगी पूरी हो गई . यह तो सब जिन्दगी की व्यवस्था हुई . अभी जिंदगी पूरी नहीं हो गई, अब जिंदगी शुरू होनी चाहिए . यह तो सिर्फ व्यवस्था हुई .

एक आदमी पलंग ले आया और बिस्तर लगा दिया और मसहरी बांध दी और तकिये लगा दिए और खड़ा हो गया और उसने कहा कि सोना पूरा हो गया . वह सोया नहीं उस मसहरी पर, वह उस बिस्तर पर लेटा नहीं . उसने कहा, इन्तजाम तो पूरा कर लिया, अब सोना पूरा हो गया; लेकिन बिस्तर का पूरा इन्तजाम सोना नहीं है, सिर्फ सोने का प्रारंभिक कदम है . जिसे हम जिंदगी कह रहे हैं, वह सिर्फ आजीविका की व्यवस्था है, और हम उसी में खो गये हैं और करीब-करीब ऐसा है कि हम उसी में खोये-खोये मर जाते हैं—जिंदगी जीने का हमें मौका ही नहीं मिलता है—वह मिलेगा भी नहीं . जिंदगी की व्यवस्था बाहर हो सकती है, जिंदगी भीतर है—इस राज को ठीक से समझ लेना जरूरी है .

जिंदगी की व्यवस्था बाहर हो सकती है, जिंदगी भीतर है . पलंग बाहर हो सकता है, जिसे सोना है, वह भीतर है . रोटी बाहर हो सकती है, जिसे खाना है, वह भीतर . पत्नी बाहर हो सकती है, जिसे प्रेम करना है, और देना है और लेना है, वह भीतर है . जिंदगी का सारा इन्तजाम बाहर है और जिंदगी भीतर है; लेकिन हम बाहर के इन्तजाम में ही खो जाते हैं और भूल जाते हैं . और कोई आदमी भीतर की तरफ जाय, तो हम कहेंगे—क्या पागलपन कर रहे हो ? जिंदगी को छोड़कर कहां भागे चले जा रहे हो ? लेकिन ऐसा हो जाता है, अगर बहुत लोग यही कहें, तो बेचारा जो जा रहा है अपनी तरफ, वह भी सोचने लगता है कि पता नहीं; क्योंकि जब सारे लोग कह रहे हैं, हजारों लोग यही कह रहे हैं, तो यही ठीक कहते होंगे .

सुनी होगी एक कहानी . छोटी-सी कहानी है कि एक ब्राह्मण एक गांव से एक बकरी खरीदकर वापिस लौट रहा है . बड़ी प्रसिद्ध है कहानी; लेकिन आधी सुनी होगी, मैं पूरी ही सुनाना चाहता हूं . वह बकरी को रखकर कंधे पर वापिस लौट रहा था . सांझ हो गई है, दो चार गुंडों ने उसे देखा है . उन्होंने कहा कि यह बकरी तो बड़ी स्वादिष्ट मालूम पड़ती है . इस नासमझ ब्राह्मण के साथ जा रही है, इसको मजा भी क्या आयगा ! ब्राह्मण को भी क्या ? बकरी को भी क्या ? इस बकरी को छीन लेना चाहिए . एक गुंडे ने आके उसके सामने, उस ब्राह्मण से कहा : "नमस्कार पंडित जी ! बड़ा अच्छा कुत्ता खरीद के लाये हैं ." उसने कहा : "कुत्ता ! बकरी है महाशय . आंखें कमजोर हैं आपकी ?" उसने कहा : "बकरी कहते हैं इसे आप ? आश्चर्य ! हम भी बकरी को जानते हैं; लेकिन अपनी-अपनी मरजी, कोई कुत्ते को बकरी कहना चाहे तो कहे ." वह आदमी चल पड़ा . उस ब्राह्मण ने सोचा अजीब पागल हैं इस गांव के ! बकरी को कुत्ता कहते हैं; लेकिन फिर

भी एक दफे टटोलकर देखा . शक तो थोड़ा आया ही . (हास्य) लेकिन फिर पाया कि नहीं बकरी है, बिलकुल फिजूल की बात है .

अब दस कदम आगे बढ़ा था, शक मिटाकर किसी तरह आश्वस्त हुआ था, कि दूसरा उनका साथी मिला . उसने कहा : "नमस्कार पंडित जी . आश्चर्य कि ब्राह्मण होकर कुत्ता सिर पर रखे हैं ! जात से बाहर होना है ?" उसने कहा : "कुत्ता !" लेकिन अब वह इतनी हिम्मत से न कह सका कि यह बकरी है—हिम्मत कमजोर पड़ गयी थी . उसने कहा : "आपको कुत्ता दिखाई पड़ता है ?" उसने कहा : "दिखाई पड़ता है ! है, नीचे उतारिये . गांव का कोई आदमी देख लेगा पड़ोस का तो मुश्किल में पड़ जायेंगे ." वह आदमी गया तो उस ब्राह्मण ने उस बकरी को नीचे उतारकर गौर से देखा, बिल्कुल बकरी थी . निश्चित बिलकुल बकरी है, लेकिन दो-दो आदमी भूल कर जायं यह जरा मुश्किल है . फिर भी सोचा—मजाक भी कर सकते हैं . अब वह डरकर चल रहा है . अब वह अंधेरे में से जरा बचकर निकल रहा है . तीसरा आदमी इसे एक गली के किनारे से मिला . उसने कहा : "पंडित जी हद कर दी, कुत्ता कहां मिल गया ? कुत्ते की तलाश मुझे भी है . कहां से ले आये हैं ? एक ऐसा कुत्ता मैं भी चाहता हूं ." तब तो वह यह भी न कह सका कि क्या कह रहे हैं . उसने कहा : "जी हां, खरीदकर ला रहा हूं ." (हास्य) वह आदमी गया कि फिर उसने उतारकर भी नहीं देखा . उसे छोड़ा एक कोने में और भागा . उसने सोचा कि अभी ऐसे भाग ही जाना उचित है . झंझट हो जायगी, गांव के लोग देख लेंगे . पैसे तो मुफ्त गये ही गये, जात और चली जा सकती है . यह जो तीन आदमी कह दें एक बात को, तो बड़ी सच मालूम पड़ने लगती है .

यह तो आधी कहानी है . दूसरे जनम में ब्राह्मण फिर बकरी लेकर चलता है . बकरी लेकर लौट रहा है, लेकिन पिछले जनम की याद है . और जिसको याद रह जाय, उसी को तो ब्राह्मण कहना चाहिए; नहीं तो किसी और को ब्राह्मण कहना नहीं चाहिए . (तालियां) बकरी लेकर लौट रहा है . वही गुंडे, असल में हम भूल जाते हैं, इसलिए ख्याल नहीं रहता कि वही-वही बार-बार हमको कई बार मिलते हैं—कई जन्मों में वही लोग बार-बार मिल जाते हैं . वही तीन गुंडे . उन्होंने देखा—अरे ! ब्राह्मण बकरी को लिये चला जा रहा है . छीन लो . उन्हें कुछ पता नहीं है कि पहले भी छीन चुके हैं, तो शायद फिर दुबारा करना मुश्किल हो जाय . फिर उन्होंने षड़यंत्र रच लिया है . फिर एक गुंडा उसे रास्ते पर मिला . उसने कहा : "नमस्कार पंडित जी . बड़ा अच्छा कुत्ता कहां ले जा रहे हो ? पंडित जी ने कहा कि

कुत्ता सच में बड़ा अच्छा है ." उसने गौर से देखा ."अरे !" उस गुंडे ने सोचा कि हमको तो बकरी दिखाई पड़ती थी और हम तो धोखा देने के लिये कुत्ता कहते थे . और उस पंडित ने कहा : "कुत्ता सच में बड़ा अच्छा है, बड़ी मुश्किल से मिला है . बहुत मांग के लाया हूं . बड़ी मेहनत की, किसी आदमी की खुशामद की, तब मिला है ." उस गुंडे ने बहुत गौर से फिर से देखा कि मामला क्या है, भूल हो गई ! लेकिन उसने कहा : "नहीं; पंडित जी कुत्ता ही है न ?" उसने कहा : "किसकी बात कर रहे हैं आप ? कुत्ता ही है ." अब वह गुंडा मुश्किल में पड़ गया . अब वह यह भी नहीं कह सकता कि बकरी है; क्योंकि खुद ही उसने कुत्ता कहा . (हास्य) दूसरे कोने पर दूसरा गुंडा मिला . उसने कहा कि धन्य है, धन्य महाराज, आप कुत्ता सिर पर लिये हुए हैं ! ब्राह्मण ने कहा : "कुत्ते से मुझे बड़ा प्रेम है . आपको पसंद नहीं आया कुत्ता ?" उस आदमी ने गौर से देखा, उसने कहा : "कुत्ता !" तीसरे चौरस्ते पर मिला है तीसरा आदमी; लेकिन उन दोनों ने उसको खबर दे दी कि मालूम होता है, हम ही गलती में हैं . (हास्य) हमें बकरी दिखाई पड़ रही है . उस तीसरे आदमी ने गौर से देखा . उस पंडित ने कहा : "क्या देख रहे हैं गौर से ?" उसने कहा : "कुछ नहीं, आपका कुत्ता देख रहा हूं... (फिर से मुक्त हास्य) काफी अच्छा है ."

हम भीड़ से जी रहे हैं और चल रहे हैं . और पुनरुक्ति हमारा आधार बन गया है . चारों तरफ जो है, वो हमें स्वीकार हो जाता है . और अगर पुनरुक्ति की जाय बार-बार असत्य की भी, तो वह सत्य मालूम पड़ने लगता है . यह बात बहुत बार दोहराई गई है कि संन्यासी वह है, जो भाग रहा है जिंदगी से . जो भाग रहा है, वह संन्यासी तो क्या है, गृहस्थ भी नहीं है . संन्यासी होना तो बहुत मुश्किल है . जो जिंदगी को जी रहा है, वह संन्यासी है . अगर भागने की भाषा में सोचना हो तो गृहस्थ जिंदगी से भागा हुआ हो सकता है, संन्यासी भागा हुआ नहीं हो सकता . लेकिन हम भागे हुए संन्यासियों को जानते हैं . असल में हमने भागे हुए को ही संन्यासी समझ रखा है, इसलिए बड़ी भूल हो गई . संन्यासी और जिंदगी से भागेगा ! तो फिर जिंदगी को जियेगा कौन ? और संन्यासी अगर जिंदगी से भागेगा, तो परमात्मा को फिर जानेगा कौन ? क्योंकि कहीं अगर परमात्मा है, तो जिंदगी में ही छिपा है . नहीं...संन्यासी जिंदगी को जीता है, उसकी परिपूर्णता में. लेकिन निश्चित ही परिपूर्णता में जीने के लिए बहुत-सी बातें उससे छूटकर गिर जाती हैं . आप यह मत सोचना कि वह छोड़ देता है . अब मेरे हाथों में कंकड़-पत्थर भरे हों और मुझे हीरों की खदान मिल जाय और मैं पत्थर

छोड़ दूं हाथ से और हीरों की खदान से हीरे बीनने लगूं, तो आप कहें कि यह आदमी बड़ा पागल मालूम होता है, उसने कंकड़-पत्थरों का त्याग कर दिया . तो पागल मैं हूं या आप ? आपको हीरे नहीं दिखाई पड़ रहे हैं—आपको हीरे की खदानें नहीं दिखाई पड़ रही हैं . आपको सिर्फ इतना ही दिखाई पड़ रहा है कि मेरे हाथों में कंकड़-पत्थर थे वह मैंने छोड़ दिये . मैं बड़ा त्यागी हूं .

अब तक किसी संन्यासी ने कोई त्याग नहीं किया है . सिर्फ नासमझ त्याग कर लेते हों, बात दूसरी है . संन्यासी तो और बृहत्तर आनंद को उपलब्ध हो जाता है, इसलिए हाथ उसे क्षुद्र से खाली करने पड़ते हैं . वह हाथ से छोड़ता नहीं है, चीजें छूट जाती हैं, बेमानी हो जाती है . अगर आपको हीरा मिल जाय, तो आप पत्थर को हाथ में लेके चलेंगे, या कि पत्थर आपको छोड़ना पड़ेगा ? नहीं, पता ही नहीं चलेगा कि कब पत्थर हाथ से छूट गया और हीरा आ गया . हां दूसरे—जिनके हाथों में अभी भी पत्थर है—वह समझेंगे कि बड़ा त्यागी आदमी है . उन्हें वो हीरा दिखाई नहीं पड़ रहा. और कुछ ऐसे हीरे हैं, जो दिखाई नहीं पड़ते हैं . धर्म का उन्हीं से सम्बन्ध है, जो दिखाई नहीं पड़ते हैं . कुछ ऐसे भोग हैं, जो दिखाई नहीं पड़ते हैं . संन्यासी वह नहीं है, जिसने भोग छोड़ दिया, संन्यासी वह है, जो भोग की पूर्णता को उपलब्ध हुआ—जो अब परमात्मा को भी भोग रहा है . इसे ठीक से ही समझ लेना—जो परमात्मा को भी भोग रहा है, जो भोजन कर रहा है, तो सिर्फ भोजन ही नहीं कर रहा है, भोजन में परमात्मा का स्वाद भी समाविष्ट है . और जो अगर आपके सुन्दर चेहरे को देख रहा है तो आपके सुन्दर चेहरे को ही नहीं देख रहा है, आपके भीतर जो सौंदर्य की अनंत धारा जुड़ी है प्रभु से, वह भी उसे दिखाई पड़ गई है . संन्यासी का अर्थ है . वह, जिसने भोग का राज जान लिया है—जिसने जीवन के रस की उपलब्धि की कला, कीमिया सीखली . लेकिन, हम तो यही सोचते रहे हैं कि भागने वाला संन्यासी है . भागने वाला रुग्ण है, संन्यासी नहीं है . भागने वाला विक्षिप्त है . भागने वाला जो हाथ में था कंकड़-पत्थर, वह भी उसने छोड़ दिया है और हीरे तो उसे मिले नहीं . वह बड़ी मुश्किल में पड़ गया . इसलिए जिसे हम इस देश में संन्यासी कह रहे हैं, सारी दुनिया में वह बड़ी मुश्किल में पड़ा हुआ आदमी है . उसने घर भी छोड़ दिया, पत्नी भी छोड़ दी, बच्चे भी छोड़ दिये और परमात्मा भी उसे मिला नहीं . वह त्रिशंकु की भांति बीच में अटका रह गया .

मुझे कितने संन्यासी मिलते हैं रोज . अगर सबके सामने मुझसे बात करते हैं, तो आत्मा-परमात्मा की बात करते हैं . एकान्त में मुझे मिलते हैं

तो कहते हैं, हम बड़ी मुश्किल में पड़ गये हैं; क्योंकि जो था—वह हमने छोड़ दिया है और जो मिलने की आशा थी—वह मिला नहीं . हम बहुत कठिनाई में हैं . संन्यासी की कठिनाई का आपको पता नहीं कि संन्यासी कितनी कठिनाई में हैं . वह तो संन्यासी भाग क्यों नहीं आता संन्यास छोड़कर ? हमने लौटने के सब रास्ते बंदकर रखे हैं अन्यथा सौ में से निन्यान्नबे संन्यासी आज जायें और कल वापिस लौट आयें . इसीलिये हमने रास्ते भी बंदकर रखे हैं कि लौट मत आना . लौटने का पक्का डर है . तो हम कहते हैं, गृहस्थ संन्यासी हो, तो आदर देते हैं . संन्यासी से गृहस्थ में वापिस लौटे, तो अनादर करते हैं . अनादर रोकने का कारण बन जाता है . अपमान करते हैं, अपमान रोकने का कारण बन जाता है . एक दफा आदमी संन्यासी हो जाय उसे लौटने की हम सुविधा नहीं देते हैं । हम कहते हैं, बस, संन्यास में 'एन्ट्रेन्स' तो है 'एक्जिट' बिलकुल नहीं है . वहां भीतर जाने का रास्ता है, बाहर आने का रास्ता ही नहीं रखा . बाहर आने का रास्ता इसलिए नहीं रखा हुआ है कि अगर रखें रास्ता, तो हाल खाली हो जायं . वहां से सभी वापिस आ जायं . इस दरवाजे से जायं और दूसरे दरवाजे से दूसरे दिन बाहर आते मालूम पड़ें. क्योंकि जो आदमी बिना पाये छोड़ देगा, वह मुश्किल में पड़ जायगा .

पाना पहले है, छोड़ना पीछे है . छोड़ना पाने की छाया है . जो पा लेता है, वह छोड़ सकता है . जो परमात्मा को पा लेता है, वह संसार को छोड़ सकता है . छोड़ने की बात ही फिजूल है . असल में जो परमात्मा को पा लेता है, उससे वह सब क्षुद्रतायें छूट जाती हैं, जिन्हें वह कल पकड़े हुए था . लेकिन यह हमारे ख्याल में न होने से हमने एक त्याग की, छोड़ने की 'नेगेटिव' बात की . उन मित्र ने पूछा है कि आप छोड़ने की बातें मत बताइये. मैं बता ही नहीं रहा हूं छोड़ने की बात, मैं 'नेगेटिव' बात नहीं बता रहा हूं . मैं तो बिलकुल विधायक (पाज़ीटिव) बात ही कह रहा हूं . मैं तो यही कह रहा हूं कि जिन्दगी ही परमात्मा है और इसे कैसे हम पूरी तरह जी सकें—उसकी कला धर्म है .

दूसरी बात उन्होंने यह पूछी है कि बुराई है, तो बुराई को अकेले ध्यान करने से हम कैसे मिटा सकेंगे ? यह ऐसे ही है, जैसे कोई आदमी कहे कि बीमारी है और बीमारी अकेली दवा लेने से हम कैसे मिटा सकेंगे . बीमारी मिटाने का कोई सीधा रास्ता बताइये . एक आदमी कहे कि मुझे खांसी आ रही है, मुझे जुकाम है, मुझे बुखार है, मुझे 'टी० बी०' है, केन्सर है और डॉक्टर उसे एक बोतल पकड़ाता है . वह आदमी कहता है, पागल हो गये हो तुम, इधर केन्सर से मरे जा रहे हैं और तुम बोतल पकड़ा रहे हो !

बोतल क्या करेगी ? वह आदमी कहे कि इधर केन्सर से मरा जा रहा हूं, तुम लाल रंग का पानी मुझे पकड़ा रहे हो ! लाल रंग के पानी से क्या होगा ? लेकिन उसे ख्याल में नहीं आ रही है यह बात कि केन्सर या बीमारी कोई सीधी निकालकर बाहर थोड़े ही रख देगा ! केन्सर या बीमारी निकालने के लिये, बदलाहट करने के लिए कुछ उससे विपरीत डालना पड़ेगा . हम बीमार हैं, बीमारी से विपरीत प्रयोग करने से बीमारी कट जायगी . यह थोड़ा समझ लेना जरूरी है कि बुराई है इसलिए कि हम शांत नहीं हैं . हम शांत हो जायं, तो बुराई मिट जायगी . बुराई है बीमारी, ध्यान है दवा—ध्यान है औषधि . और ध्यान रहे कि आज तक पृथ्वी पर ध्यान से बड़ी औषधि नहीं खोजी जा सकी है . बहुत औषधियां खोजी गई हैं, लेकिन ध्यान से बड़ी कोई औषधि अब तक नहीं खोजी गयी है . उसका कारण है . सबसे बड़ा कारण यह है कि हमारे ध्यान के अभाव के कारण ही हमारी बीमारियां, हमारी बुराइयां पैदा होती हैं .

जैसे उदाहरण के लिए आप में क्रोध है . आप किसी से पूछें कि क्रोध को हम सीधा अलग कैसे करें ? क्रोध को सीधा अलग करने का कोई उपाय नहीं होता . क्रोध है, वह इस बात की खबर दे रहा है कि आप भीतर अशांत हैं . अशांति से क्रोध जन्मता है . आप कहें, मुझे क्रोध को अलग करना है, मुझे अशांति से कोई मतलब नहीं है, तो आप कभी क्रोध को अलग न कर सकेंगे . आप कहें, मुझे 'पॉजीटिव', सीधा रास्ता बता दें . कोई रास्ता नहीं है . आप क्रोध में हैं, ये इस बात की खबर है, क्रोध सिर्फ लक्षण है इस बात का कि भीतर अशांति है . भीतर शांति लानी पड़ेगी . भीतर शांति आ जायगी, ऊपर से क्रोध विलीन हो जायेगा .

एक आदमी को बुखार चढ़ा है . शरीर पर गरमी है . शरीर की गरमी असली बुखार नहीं है . बुखार तो भीतर होगा, बीमारी भीतर होगी . गरमी तो केवल बीमारी की खबर है . भीतर बुखार है, भीतर बीमारी है, शरीर उतप्त हो गया है . उतप्त शरीर खबर दे रहा है कि भीतर बीमारी है . अब एक आदमी कहे कि मुझे तो शरीर के ठंडा करने का सीधा उपाय बता दो . तो ठीक है—जाओ, ठंडे पानी में नहाओ, बर्फ रख लो अपने शरीर पर, उससे बुखार ही नहीं जायगा, बीमार भी चला जायगा . तो गरमी सिर्फ लक्षण है, ताप सिर्फ लक्षण है, बीमारी नहीं है . बीमारी और गहरे में है . और शरीर की व्यवस्था है कि गरम करके वह खबर दे दे कि भीतर बीमारी है, ताकि ऊपर तक खबर पहुंच जाय, नहीं तो पता कैसे चलेगा ? क्रोध लक्षण है . बीमारी ! बीमारी भीतर अशांत चित्त है . अब वह

अशांत चित्त ध्यान के प्रयोग से शांत हो जाता है . तो मित्र मुझ से पूछते हैं कि हमारी बीमारियां हैं, अशांति है, क्रोध है, घृणा है, ईर्ष्या है, हजार तरह की बुराइयां हैं और आप कहते हैं ध्यान, अकेले ध्यान से क्या होगा ? मैं आपसे कहना चाहता हूं कि जिनको आप बीमारियां और बुराइयां कहते हैं, वे बुनियादी रूप से बुराइयां नहीं हैं . बुराइयों के सिर्फ बाहरी लक्षण हैं, बाहरी खबरें हैं . यह ऐसे ही है कि जैसे कि यहां अंधेरा भरा हो और कोई आकर हमसे कहे, अंधेरे को सीधा अलग करने का रास्ता बता दीजिये . हम उससे कहें कि तुम एक दिया जलाओ . वह कहे कि दिये से हमें कुछ लेना देना नहीं है; हमें अंधेरा अलग करना है . हमें तो अंधेरे को अलग करने का 'डायरेक्ट' रास्ता चाहिये—सीधा रास्ता चाहिये . ये दिये-विये जलाने की झंझट में हम न पड़ेंगे . अंधेरे को दूर करना है . उसकी बात तो ठीक है . वह कहता है, अंधेरे को दूर करना है, तो दिया क्यों जलायें ? आप अंधेरे को काटने की कोई तरकीब बता दें . कोई तलवार है जिससे अंधेरा कट जाय ? कोई डब्बे हैं, जिसमें अंधेरे को पेक करें और फेंक आयें . कोई ऐसी तरकीब बतायें कि अंधेरे से सीधा निपटारा हो जाय . हम इस दिये के जलाने की झंझट में नहीं पड़ना चाहते हैं . इसमें हम पड़ जायेंगे तो अंधेरा कौन अलग करेगा ? तब मुश्किल हो जायगी . अंधेरे को सीधा अलग नहीं किया जा सकता . दिया जलाया जा सकता है . और दिये के जलने पर अंधेरा अलग नहीं होता है, असल में अंधेरा तो था ही नहीं . दिये के जलने पर पता चल जाता है कि नहीं था . कहीं चला नहीं जाता अंधेरा . इधर हमने दिया जलाया कि उधर का अंधेरा बगल के रास्ते से कहीं और चला गया, कहीं जाता नहीं है . अंधेरा कोई वस्तु नहीं है, अंधेरा केवल दिये का अभाव है—प्रकाश का अभाव है . जिसको हम 'ईवल' कहते हैं, बुराई कहते है, वो केवल भलाई का अभाव है . जिसे हम क्रोध कहते हैं, वो केवल शांति का अभाव है . ध्यान दिये का जलाना है . भीतर दिया जल जाय, बाहर से यह अभाव विदा हो जायेंगे . अब तक किसी ध्यानी आदमी ने अगर कोई बुराई की हो तो विचारणीय हो जाय .

एक बहुत अद्‌भुत फकीर हुआ नागार्जुन . वो एक गांव से गुजर रहा है . और उस गांव की रानी उसका बड़ा आदर करती है . उसने उसे भोजन खिलाया है . नंगा फकीर है और उसके एक हाथ में सोने का पात्र दे दिया और कहा : "लकड़ी का पात्र यहां छोड़ दो ." सोने का पात्र है और उस पर हीरे जड़े हैं . उसकी कीमत लाखों में होगी . नागार्जुन ने ले लिया और चल पड़ा . रानी भी थोड़ी चकित हुई; क्योंकि उसने भी सोचा था कि

त्यागी है, कहेगा कि मैं छू नहीं सकता सोने को . हम त्यागी को ऐसे ही पहचानते हैं . हम त्यागी को भी सोने से ही पहचानते हैं . जब तक वह ये न कहे कि हम छू नहीं सकते सोने को, तब तक हम त्यागी को नहीं पहचानते— जब तक कोई यह नहीं कहता, यह सब मिट्टी है, हम नहीं छूते . लेकिन मिट्टी को तो वह रोज छूता है और सोने को इन्कार करता है . अगर मिट्टी है, तो बेफिक्री से छुओ . नहीं, लेकिन वह कहता है, सोना मिट्टी है, हम न छुयेंगे और मिट्टी को मजे से छू लेता है, तब जरा शक होता है; कि सोना मिट्टी नहीं है . वह कह रहा है कि सोना मिट्टी है; लेकिन उसको सोना, सोना दिखाई पड़ रहा है . उस रानी ने उस फकीर को कहा : " अरे ! आपने मना नहीं किया . कहना था कि यह सोने का पात्र है ." उसने कहा : "कैसा सोने का पात्र ! कहां का सोने का पात्र !" उस रानी ने कहा : "मैंने लाखों रुपये खर्च किये हैं इस पर ." उसने कहा : "वो तेरी नासमझी होगी . वो तू जान तेरा काम जाने, मुझे क्या मतलब ? मुझे इसमें रोटी मांगनी है . पात्र किसी का भी हो, रोटी इसमें खानी है . इससे ज्यादा मतलब मुझे नहीं है . मुझे पात्र होने से मतलब है . हमारा काम इतना है कि इसमें रोटी और दाल रखके हम खालें . हमारा इतना काम तो दे देगा न यह पात्र ?" उस रानी ने कहा : "उतना तो दे ही देगा; लेकिन मैं सोचती थी कि सोने का है, आप शायद इन्कार करेंगे ." उसने कहा : "मैं फकीर आदमी मुझे सोने से क्या मतलब !" आप समझे ना ? उसने कहा : "मैं फकीर आदमी मुझे सोने से क्या मतलब ? होगा सोने का तो उनके लिये होगा, जिनको सोने का मतलब है ." रानी चकित हुई .

फकीर तो चला गया . नंगा फकीर है, सोने का पात्र है, हीरे जड़े हैं वह चमकते हैं धूप में . गांव के एक चोर को दिखाई पड़ा . उस चोर ने हैरान होकर सोचा, "मरे जाते हैं, परेशान हुए जाते हैं, न हीरे मिलते हैं, न सोना मिलता है और यह आदमी नंगा आदमी—इसको कहां से इतना बढ़िया पात्र मिल गया !" मगर जिन्दगी ऐसी ही है कि यहां जो दौड़ता है जिन चीजों के पीछे, उन्हीं को खो देता है . यहां जिन्दगी का नियम यह है कि भागो किसी के पीछे और वह भाग खड़ा होगा . और तुम उसकी तरफ पीठ करके भागो, वह थोड़ी देर में तुम्हारे पीछे पता लगाता आता है कि मामला क्या है, आप जा रहे हैं ? उस चोर ने मन में कहा, लेकिन, यह फकीर कितनी देर तक बचा सकेगा इस पात्र को ? चोर उसके पीछे हो लिया फकीर गाँव के बाहर मरघट में ठहरा है— एक टूटे खंडहर में . भरी दुपहरी में पीछे पदचाप सुनाई पड़ते हैं, तो उसने सोचा मेरे पीछे तो कोई

कभी नहीं आता . मालूम होता है इस पात्र के पीछे कोई आ रहा है . यहां दुनिया बड़ी अजीब है . यहां आदमियों के पीछे कोई नहीं जाता, हाथ में सोने के पात्र हों तो बहुत लोग चले जाते हैं . यहां आदमी की तो कोई इज्जत नहीं है . हाथ में पात्र काहे का है—यह सवाल है . आत्मा की तो कोई कीमत नहीं है यहां . कपड़े कैसे हैं ? खीसे गरम हैं, नहीं गरम हैं—वह मूल्यवान है . फिर गया फकीर अंदर . उसने सोचा कि नाहक यह बेचारा भर दुपहरी में इतनी दूर तक आया . रास्ते में कह देता तो वहीं उसको दे देता . और अब न मालूम कितनी देर तक इसको छिपकर बैठना पड़ेगा . मेरा तो सोने का समय हो गया . तो उसने खिड़की से वो पात्र बाहर फेंक दिया और सो गया . वह चोर वहीं खिड़की के नीचे छिपा था . पात्र को गिरते देखा तो बड़ा हैरान हो गया . सोचा, अजीब आदमी है ! इतना कीमती पात्र ऐसे फेंक दिया ! खड़े होकर उसने कहा कि धन्यवाद, मैं तो चोरी करने आया था और आपने पात्र ही फेंक दिया ! उस फकीर ने कहा कि मैंने सोचा, नाहक तुम्हें चोरी करवाने के लिये मैं क्यों जुम्मेवार बनूं ? (तालियाँ) असल में चोरों के लिए वे सब लोग जिम्मेवार है, जिनकी तिजोरियों पर ताले हैं . **(जोर से तालियां)** फकीर ने आगे कहा : "मैं क्यों फिजूल झंझट में पड़ूं ? तो मैंने सोचा फेंक दूं . मैं भी झंझट से बचा, आराम से सो जाऊं और तुम भी अपना पात्र ले जाओ, तुम भी चोर न बन पाओ." उस चोर ने, यह सोचकर कि अजीब आदमी है, फकीर से कहा : "क्या मैं थोड़ी देर भीतर आ सकता हूं ?" उस फकीर ने कहा: "इसीलिये मैंने पात्र बाहर फेंका . भीतर तो तुम आते ही, लेकिन तब, जब मैं सो गया होता . इसलिए मैंने पात्र फेंका कि जब तुम भीतर आ जाओ तो सोने का पात्र ही नहीं, शायद कुछ और भी तुम्हें दे सकूं ." वह चोर भीतर आ गया . वह पैर पकड़कर उस फकीर के बैठ गया . उसने कहा : "मैंने आप जैसा आदमी नहीं देखा . मन में ईर्ष्या होती है . कभी-कभी ऐसा होता है, कब वह दिन होगा कि मैं भी ऐसे सोने के पात्र खिड़की के बाहर फेंक सकूं ." उस फकीर ने कहा : "बस हो गया काम, यही मैं चाहता था . अब तू जा . बात हो गयी ?" उसने कहा : "नहीं, इतनी जल्दी न जाऊंगा . इतनी शांति आपने कहां पायी कि सोने का पात्र इस तरह फेंक सकते हो ? इतना आनंद कहां पाया कि सोने के पात्र का कोई मूल्य नहीं मालूम पड़ता ? इतनी खुशी, इतनी जिंदगी कहां मिल गई ? कुछ मुझे भी रास्ता बताओगे ?" लेकिन एक बात पहले कह दूं, उस चोर ने कहा कि मैं और भी संतों के पास गया हूं . [चोर अक्सर संतों के पास जाते हैं . असल में तो चोरों के सिवाय शायद ही कोई जाता हो संतों के पास, (हास्य) वो ही जाते हैं .] संतों के पास अक्सर गया हूं तो वो मुझसे पहले तो यही कहते हैं कि

चोरी छोड़ दो, फिर कुछ हो सकता है और वह छूटती नहीं अपने से . वह छूट सकती है ? तो एक पहले बात बता दूं कि चोरी छोड़ने की बात मत करना . वह फकीर हंसने लगा . उसने कहा : "फिर मालूम होता है, तुम संतों के पास गये ही नहीं . तुम भूतपूर्व चोरों के पास गये होगे; (हास्य व तालियां) क्योंकि जो पहले से ही एकदम चोरी छोड़ने की बात करते हैं तो जरूर कुछ गड़बड़ है, चोरी से कुछ लगाव है उनका . पहली बात यही करते हैं ?" उसने कहा : "यही करते हैं . सब जानते हैं कि मैं चोर हूं तो पहली बात यह कहते हैं, चोरी छोड़ो, फिर कुछ हो सकता है . बात यहीं अटक जाती है . वह शर्त ही पूरी नहीं होती ." उस फकीर ने कहा : "हम यह बातें न करेंगे, हमें चोरी से कुछ लेना देना नहीं है ." तो उस फकीर की बात सुनकर चोर ने कहा : "फिर अपना उतना मेल हो सकता है . कहिये, मैं करूंगा ." उस फकीर ने कहा : "एक काम कर, चोरी ध्यानपूर्वक करना ." चोर ने कहा : "क्या मतलब चोरी करूं ?" उस फकीर ने कहा : "बिलकुल बेफिक्री से कर, लेकिन कर ध्यान पूर्वक ." चोर ने कहा : "यह ध्यानपूर्वक चोरी का क्या मतलब हुआ ?" उस फकीर ने कहा कि जब तू चोरी करे तो पूरा जागा हुआ, शांत मन से, पूरे होश से भरे हुए चोरी करना—बेहोशी में मत करना—पूरा जाग्रत होकर कि चोरी कर रहा हूं; जानते हुए हाथ उठाना, ताले तोड़ना, धन निकालना; जानते हुए कि चोरी कर रहा हूं, बस इतना और कुछ नहीं ." उस चोर ने कहा : "यह हो सकेगा . नतीजे की खबर कब दूं ?" उस फकीर ने कहा : "पंद्रह दिन तक मैं यहां टिका हूं, तू आ जाना, जब भी तुझे कुछ हो ."

वह चोर दूसरे दिन आया और रोने लगा . उसने कहा : "मुश्किल में डाल दिया . आप आदमी बड़े अजीब मालूम पड़ते हो; क्योंकि मैं कल चोरी करने गया, ऐसा मौका जिंदगी में कभी भी नहीं मिला था . राजा के महल में पहुंच गया था, तिजौड़ी खुल गयी, अब मैं बड़ी मुश्किल में पड़ा था उस तिजोरी के सामने . हाथ डालता हूं होशपूर्वक तो हाथ भीतर नहीं जाता; क्योंकि जैसे ही मुझे खयाल आता है कि चोरी कर रहा हूं, हाथ रुक जाता है—क्योंकि चोर मैं भी नहीं होना चाहता हूं . मुझे चोर अगर कोई कह दे, तो मैं उसकी गरदन काट डालूं . चोर मैं भी नहीं होना चाहता हूं . होश छूटता है तो हाथ भीतर चला जाता है; लेकिन जैसे ही होश आता है, मुट्ठी खुल जाती, हाथ बाहर लौटा लेता हूं . आधी रात बीत गयी और आखिर बिना चोरी किये ही वापिस लौट आया हूं . यह तो आपने मुश्किल में डाल दिया . सीधा कहो ना कि चोरी मत करो ." उस फकीर ने कहा : "चोरी

से हमें कुछ लेना देना नहीं; पर ध्यानपूर्वक करो, क्योंकि इतना मैं जानता हूं कि ध्यानपूर्वक आज तक कोई चोरी न कर सका है, न कर सकता है ."

ध्यानपूर्वक क्रोध कर सकते हैं ? कैसे करियेगा ध्यानपूर्वक क्रोध ? एक मेरे मित्र बहुत क्रोधी हैं . वह मुझसे कहते थे कि मुझे कुछ सीधा-सरल रास्ता बताइये . तो मैंने एक कागज की पट्टी पर उनको लिखकर दे दिया कि अब मुझे क्रोध आ रहा है ."और इसको," मैंने कहा : "खीसे में रखो सदा और जब भी क्रोध आये, पहले इसको निकालकर पढ़ना, वापिस रखना, फिर क्रोध करना . उन्होंने कहा कि यह तो हो सकेगा ; क्योंकि इसमें दिक्कत नहीं, लेकिन नहीं हो सका; क्योंकि जैसे ही पट्टी का ख्याल आता कि अब क्रोध आ रहा हैं, अचानक पाते कि भीतर कोई चीज़ बिखर गयी और फैल गयी . ध्यानपूर्वक क्रोध नहीं हो सकता . ध्यानपूर्वक बुराई नहीं हो सकती . ध्यानपूर्वक पाप नहीं किया जा सकता . और जो ध्यानपूर्वक किया जा सकता हो वह पुण्य है, वह पाप नहीं हो सकता . (वाह-वाह)

इसलिये मैं इतना जो जोर देता हूं कि बुराई की इतनी चिंता न लें, जितनी चिंता इस बात की लें कि आपका जीवन ध्यानपूर्वक हो जाय—एक 'मेडीटेटिव' हो जाय, ध्यानपूर्वक जीने लगें . तब आप पायेंगे कि जिंदगी सब तरफ से बदलनी शुरू हो गयी . क्योंकि ध्यानपूर्वक बुरा तो किया ही नहीं जा सकता, फिर वही शेष रह जाता है, जो किया जा सकता है . पाप और पुण्य की परिभाषा मेरी दृष्टि में यही है . कोई मुझसे पूछता है कि पाप और पुण्य की क्या परिभाषा है ? तो मैं यही कहता हूं कि जिसे जाग्रत, होशपूर्वक, ध्यानपूर्वक किया जा सके, वह पुण्य और जिसे ध्यानपूर्वक किया ही न जा सके, वह पाप है . और कोई परिभाषा मेरी समझ में नहीं आती . किसी आदमी की छाती में जानते हुए, ध्यानपूर्वक छुरा नहीं भोंका जा सकता . छुरा तभी भोंका जा सकता है, जब हम ध्यान को खो दें . ध्यानपूर्वक ही हम जीवन में शुभ को कर सकते हैं . अशुभ ?...अशुभ कभी भी संभव नहीं है . बुराई को इस पृथ्वी से मिटाया जा सकता है . बुराई को आमूल नष्ट किया जा सकता है . लेकिन बुराई को अब तक आमूल नष्ट नहीं किया जा सका . आमूल नष्ट करना तो दूर, बुराई रोज बढ़ती चली गयी . जरूर कहीं भूल हो गयी . भूल यही हो गयी कि हमने बुराई को सीधे मिटाने की कोशिश की है .

पिछले पांच हजार वर्ष की नैतिकता, पांच हजार वर्ष के साधु-संत, पांच हजार वर्ष के शास्त्र, पांच हजार वर्ष का धर्म आदमी को बुराई को सीधा मिटाने की कोशिश में लगाये हुए हैं . कहते हैं कि सीधे बुराई को मिटाओ . वो कहते हैं, असत्य मत बोलो, पाप मत करो, चोरी मत करो. कुछ उसका परिणाम

नहीं हो सका . जरा भी परिणाम नहीं हो सका . चोरी बढ़ती चली गयी है . पाप रोज बढ़ता चला गया है, रोज बढ़ रहा है . इसमें पापी जिम्मेवार नहीं है . इसमें हमारे पाप का निदान ही, 'डायग्नोसिस' ही भूल भरा है—हमने बात ही गलत की है . अगर किसी आदमी से चोरी न करवानी हो तो यह मत कहिये कि चोरी मत करो; क्योंकि चोरी मत करो इसका कोई अर्थ न हुआ . जैसे किसी आदमी को बुखार है, तो हम उसे कहें कि बुखार को मत लाओ . वह आदमी कहेगा, क्या बातें आप कर रहे हैं ! वह आया है औषधि लेने, आप उसको उपदेश दे रहे हैं . वह कहता है, मुझे औषधि चाहिये, बुखार आ गया है . आप कहते है, तुम बड़े पापी हो, बुखार लाओ ही मत, बुखार बड़ी बुरी चीज़ है. वो भी राजी होता है कि बुखार बुरी चीज़ है . वह भी कहता है कि बुखार मैं नहीं चाहता . तो हम उसे कहते हैं कि फिर तुम लाये क्यों ? लाओ ही मत . वो कहता है, बात तो समझ में आती है, लेकिन बुखार आ जाता है . उपाय ? उपाय यही है कि तुम लाओ मत . यह उपाय नहीं है . बुखार को मिटाने के लिए औषधि खोजनी जरूरी है . सिर्फ उपदेश काफी नहीं है .

मैं आपको यह कह रहा हूं कि बुराई को मिटाने के लिए अब तक हमने उपदेश का प्रयोग किया है . यह मत करो, वह मत करो, न करने से कुछ भी फल नहीं होता; क्योंकि जिसको आप नहीं करते हैं, उसके करने की क्षमता आपके भीतर इकट्ठी होती चली जाती है और कभी बहुत विस्फोट से निकलती है . इसलिये अच्छे आदमी जब बुरे होते हैं, तब बहुत बुरे होते हैं . बुरा आदमी बहुत थोड़ा ही बुरा होता है . जो आदमी दिन में दो चार दफे क्रोध कर लेता है, वह आदमी कभी किसी की हत्या नहीं कर सकता है . वो इतना कभी क्रोध ही इकट्ठा नहीं कर पाता बिचारा कि हत्या कर दे . रोज ही निकल जाता है उसका क्रोध . लेकिन जिसने दो-चार साल तक क्रोध न किया हो, उससे जरा सम्हलकर रहना; क्योंकि अगर उसका विस्फोट हो जाय तो वो हत्या से कम न करेगा—इससे कमसे तो उसका काम नहीं होगा . इतना उसने इकट्ठा कर लिया है . जिंदगी में जो बड़े पाप करते हैं, वे, वे लोग हैं, जो छोटे-छोटे पाप न करने की जिद में बहुत-सी पाप की वृत्ति को इकट्ठा कर लेते हैं . इसलिए कभी अच्छा आदमी जब गिरता है, तब वह बुरी तरह गिरता है—बहुत खाइयों में गिरता है . अच्छे समाज जब गिरते हैं, तब बहुत खाइयों में गिरते हैं . यह हमारा समाज ही बड़ा अच्छा समाज था . और आज हम इसे देखें तो आज इससे बुरा समाज पृथ्वी पर दूसरा नहीं है . क्या हो गया इस समाज को ? इसने छोटी-छोटी बुराइयां न करने की कसम खा

ली है . इसने इतनी बुराइयां इकट्ठी कर ली हैं भीतर कि अब सब तरफ से फोड़े-फुन्सियों में फूट-फूटकर निकल रही हैं . अब पूरा व्यक्तित्व देश का सड़ सड़ रहा है .

नहीं, मैं यह मानता हूं कि हमने बुराई को मिटाने की दृष्टि ही गलत पकड़ ली है . बुराई को अगर मिटाना है, वह जो 'ईवल' है, वह जो अशुभ है, वह जो पाप है, वह क्यों पैदा होता है ? यह समझना जरूरी है . वह इसलिए पैदा होता है कि मन अशांत है . अशांत मन कितने-कितने पाप कर सकता है, इसका हिसाब लगाना मुश्किल है . अशांत मन पुण्य तो कर ही नहीं सकता है; क्योंकि पुण्य के लिए शांति की भूमिका चाहिए . फूल पुण्य का खिल सके तो शांति की भूमि चाहिए . शांति की भूमि में ही पुण्य का फूल खिल सकता है . अशांति की भूमि में पाप का ही फूल खिलता है . भूमि ही गलत हम बनाये हुए हैं . मैं भूमि को बदलने के लिये ही जोर दे रहा हूं . इसे लोग समझ ही नहीं पाते हैं . वो समझते हैं, ध्यान से मेरा मतलब वही है जो पहले था कि बैठकर किसी भगवान का ध्यान कर रहे हैं, कि बैठकर किसी मूर्ति का ध्यान कर रहे हैं, कि बैठकर कोई माला फेर रहे हैं, कि बैठकर किसी मंत्र का जाप कर रहे हैं . नहीं, मेरा इन ध्यानों से कोई सम्बन्ध नहीं है . ध्यान से मेरा यह मतलब नहीं है कि आप बैठकर किसी···भगवान का स्मरण कर रहे हैं . अगर भगवान का पता ही न हो तो स्मरण कैसे करियेगा ! (वाह) और किस मूर्ति का स्मरण करियेगा ? कौन-सी मूर्ति है भगवान की ? कौन-सा नाम दीजियेगा ? कौन-सा नाम है उसका ? नहीं, इससे कुछ होने का नहीं है . मैं इस ध्यान से कुछ और ही अर्थ ले रहा हूं . वह अन्तिम बात आपसे कह दूं, ताकि आपके ख्याल में रह जाय . हो सकता है बहुत से मित्र सुबह ध्यान में नहीं भी आयें, उनको भी ख्याल में आ जाय .

ध्यान से मेरा अर्थ है, परिपूर्ण समर्पण— 'टोटल सरेन्डर' . वह जो हमारे चारों तरफ विराट जीवन है—उसके साथ एक हो जाने की स्थिति, उसके साथ तालमेल बिठा लेने की स्थिति—उसमें डूब जाने की स्थिति—उसमें खो जाने की, लीन हो जाने की स्थिति , और जब कोई व्यक्ति इतनी स्थिति में प्रवेश करता है, तो उसके भीतर इतनी शांति उत्पन्न होती है, जिसका कोई हिसाब लगाना मुश्किल है. क्यों होती हैं उत्पन्न ? इसलिए उत्पन्न होती है कि जब तक हम सारे जगत से अपने को तोड़े रखते हैं, अलग रखते हैं तब तक हम सारे जगत के गहरे अर्थों में दुश्मन बने होते हैं ; और दुश्मन कभी भी शांत नहीं हो सकता . जब तक मैं सारी दुनिया से अलग हूं, तब तक सारी दुनिया मेरी दुश्मन है . जब तक मैं सारी दुनिया से भिन्न हूं, तब तक

सारी दुनिया से मुझे अपने को बचाना है . सारी दुनिया को जीतना है, अपने को बचाना है—अपने को मिटने नहीं देना है . तब तक मैं लड़ूंगा, लड़ाई अशांति बनेगी, लड़ाई तनाव बनेगी . लेकिन मैंने अगर सारी दुनिया से अपने को एक माना, एक जाना, एक पहचाना और अगर दस क्षण को भी मेरे मन से सारा विरोध छूट गया और मैं एक हो गया, तो अशांति कैसे रह जायगी ? तो चित्त शांत हो जायगा . उस चित्त की शांति की दशा में द्वार खुलता है, वो—जिसे हम प्रभु कहें, जीवन कहें—उसकी झलक पहली दफे दिखाई पड़ती है . और वह झलक दिखाई पड़ जाय तो आप तत्काल दूसरे आदमी हो जाते हैं . होना नहीं पड़ता, आप दूसरे आदमी हो जाते हैं . एक छोटी-सी कहानी से स्मरण दिलाऊं, फिर मैं अपनी बात पूरी करूं .

एक सम्राट का लड़का घर से भाग गया था . भाग क्या गया था, कोई लड़का कभी भागता नहीं, जब तक बाप भगाये ना . बाप उपद्रवी था, अक्सर बाप उपद्रवी होते हैं . (हास्य) क्योंकि बच्चे तो बहुत निरीह और निर्दोष होते हैं । जब तक उनको उपद्रव में डाला न जाय, सांचे में बिठाया न जाय तब तक उपद्रवी हो नहीं सकते हैं . बाप की पीढ़ी जब तक नई पीढ़ी को उपद्रव में न डाले, तब तक उपद्रव में जा कैसे सकती है . बाप की परेशानियों से हैरान, मुश्किल में होकर वह लड़का भाग गया था . पांच साल तक बाप ने उसकी फिक्र ही नहीं की . क्रोध में था बाप भी . लेकिन एक ही लड़का था . बाप बूढ़ा होने लगा तब उसे याद सताने लगी . फिर उसने अपने वजीरों से कहा : "ढूंढ़ो, उसे ले आओ वापिस ." **वो लड़का बेचारा राजा का लड़का था, राजा का लड़का होना भी कभी-कभी बड़ा दुर्भाग्य होता है** . राजा का लड़का था, न ठीक से पढ़ा, न लिखा . राजा का लड़का था, कभी कोई मेहनत न की थी, तो सिवाय भीख मांगने के और कोई उपाय न रहा . **राजा का लड़का अगर राजा न रह जाय तो भिखारी ही हो सकता है और कोई उपाय नहीं** . भीख मांगने लगा . पांच साल में तो भूल ही चुका था कि राजा का लड़का है . कैसे याद रखे, जब मांगनी पड़ती हो भीख तो कितनी देर तक याद रखे कि राजा का लड़का है . थोड़े दिन याद रहा होगा, फिर भूल गया . वजीर खोजते-खोजते उस गांव में पहुंचे, जहां वो भरी दुपहरी में एक साधारण-सी गंदी होटल के सामने जुआ खेलते लोगों से भीख मांग रहा था . और पैर बता रहा था, पैर में फफोले पड़े थे, कपड़े फट गये थे . कपड़े वही थे, पांच साल पहले जिनको लेकर निकला था; लेकिन अब पहचानना मुश्किल था . न कपड़े कभी धुले थे, धूल-कीचड़ से सब कट-फिट गये, सब पांच साल में बरबाद हो गये थे . उन्हीं फटे कपड़ों को पहने हुए हाथ जोड़े भीख मांग

रहा था . और मांग रहा था भीख जूते के लिए . जूते समाप्त हो गये थे और भारी तेज धूप थी और सड़कें जलती थीं और उसके पैर में फफोले थे और पट्टी बांधे था और लोगों से कह रहा था, मेरे पैर में फफोले हैं, दया करो कुछ, चार पैसे दे दो कि मैं जूते खरीद लूं . लोग उसकी तरफ ध्यान ही न दे रहे थे, कोई उसकी फिक्र ही न कर रहा था .

तब यह रथ रुका, उस द्वार के सामने आकर . वजीर ने नीचे उतर-कर देखा, वही मालूम पड़ता है . भागा हुआ पास गया . चेहरा देखा, वही है . पैर पर गिर पड़ा और कहा कि महाराज ने याद किया है, वापिस चलें . पिता बीमार हैं . राज्य का अधिकार कौन संभालेगा ? हाथ में टूटा-सा एल्यूमीनियम का बर्तन था, दस-पांच पैसे उसमें पड़े थे . एक क्षण में सब बदल गया . पात्र फेंक दिया उसने जोर से सड़क पर . सारे जुआरी चौंककर खड़े हो गये . सामने रथ खड़ा देखा, जुआ बन्द हो गया, होटल के सारे लोग बाहर आ गये . उसने वजीर से कहा : "जाओ, पहले तो यह करो कि अच्छे वस्त्र लाओ, जूते लाओ, स्नान का इन्तजाम करो, भोजन का इन्तजाम करो." उसकी आंखें बदल गयीं, उसका चेहरा बदल गया . कपड़े अभी भी वही थे, सड़क वही थी, होटल वही थी, पात्र नीचे पड़ा था; लेकिन, अब वो सम्राट हो गया था . होटल के लोगों ने कहा : "आपका चेहरा एकदम बदल गया !" उसने कहा : "बात मत करो, सोचकर बोलो, किससे बोल रहे हो ? सम्राट हूं" वजीर कंप रहा है, लोग भाग रहे हैं . कपड़े आ गए हैं; इन्तजाम हो रहा है; इत्र छिड़के जा रहे हैं; स्नान करवाया जा रहा है . वह लड़का रथ पर बैठ गया है . वे होटल के लोग बड़े उत्सुक हैं कि थोड़ी पहचान तो याद रखें . पर अब बात बिलकुल बदल गयी थी . पहले वे उसकी तरफ देख भी न रहे थे, अब वह उनकी तरफ बिलकुल नहीं देख रहा है, वह कहीं और है . क्या हो गया एक क्षण में ? एक क्षण में एक किरण आयी, एक स्मरण आया, एक रथ आया द्वार पर, जिसने कहा : "तुम तो सम्राट हो !"

ध्यान की गहराइयों में वो किरण आती है . वह रथ आता है द्वार पर, जो कहता है, सम्राट हो तुम, परमात्मा हो तुम, प्रभु हो तुम . सब प्रभु है, सारा जीवन प्रभु है . जिस दिन वो किरण आती है, वह रथ आता है, उसी दिन सब बदल जाता है . उस दिन जिंदगी और हो जाती है . उस दिन चोर होना असंभव है . सम्राट कहीं चोर होते हैं ! उस दिन क्रोध करना असंभव है . उस दिन दुःखी होना असंभव है . उस दिन एक नया जगत शुरू होता है . उस जगत, उस जीवन की खोज ही धर्म है .

इन चार चर्चाओं में, इस जीवन, इस प्रभु को खोजने के लिये क्या हम करें, उस संबंध में कुछ बातें मैंने कही हैं . मेरी बातों से वह किरण न आयेगी और मेरी बातों से वह रथ भी न आयेगा . मेरी बातों से आप उस जगह न पहुंच जायेंगे. लेकिन हां, मेरी बातें आपको प्यासा कर सकती हैं . मेरी बातें आपके मन में छाप छोड़ सकती हैं . मेरी बातों से आपके मन की नींद थोड़ी बहुत चौंक सकती है . हो सकता है, शायद आप चौंक जायं और उस यात्रा पर निकल जायं जो ध्यान की यात्रा है . तो निश्चित है, आश्वासन है कि जो कभी भी ध्यान की यात्रा पर गया है, वह धर्म के मंदिर तक पहुंच जाता है . ध्यान का पथ है, उपलब्ध धर्म का मंदिर हो जाता है . और उस मंदिर के भीतर जो प्रभु विराजमान है, वो कोई मूर्ति वाला प्रभु नहीं है, वो समस्त जीवन का ही प्रभु है .

"जीवन ही है प्रभु" इस सम्बन्ध में, इन चार दिन, मेरी बातों को इतनी शांति और प्रेम से सुना, उससे बहुत अनुग्रहीत हूं . और अन्त में सब के भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हूं . मेरे प्रणाम स्वीकार करें .

●

नई ज्योतियां ! दिव्य वाणी ! जीवन संगीत से आलोकित !

नई साज सज्जा में

भगवान श्री रजनीश के विचारों की आध्यात्मिक

त्रैमासिक संकलन पत्रिका

ज्योति शिखा

संपादक—श्री महीपाल मूल्य ५) वार्षिक

(आप भी अपना वार्षिक शुल्क भेजकर इन कृतियों को प्राप्त कीजिये या आप चाहें तो उपहार में भेंट करें)

संपर्क : **जीवन जागृति केन्द्र,** रूम नं० ५३, एम्पायर बिल्डिंग, डा० डी० एन० रोड, **बम्बई–१**

Phone : 264530

ध्यान से असाध्य साध्य बना

मेरे बचपन से आज तक का मेरा साथी मुझसे विदा हो चुका है . और विदा भी ऐसा कि फिर लौटकर आने की उम्मीद नहीं . कौन न दुखी होगा ऐसे साथी को खोकर ? पर मैं जरा भी दुखी नहीं हूँ . कारण, मेरा यह साथी मुझे बड़ी पीड़ा देता था, बड़ा कष्ट देता था—असह्य कष्ट . मेरा यह साथी था मेरे कान का रोग . मेरा दायाँ कान बिल्कुल बचपन से ही बहने लगा था, ऐसा मेरी माँ मुझे बताती है . मेरी स्मृति भी जहाँ तक लौट पाती है वहाँ से मैं भी इसे अपने साथ ही पाता हूँ . बचपन में इसके अनेक इलाज किये गये—तमाम देसी इलाज, आयुर्वेदिक नुस्खे और ऐसी-ऐसी दवायें जो कि 'रामबाण' समझी जाती थीं इस मर्ज के लिए . पर सब व्यर्थ,यह जो न गया तो न गया . बहना ज़ारी रहा . इधर ज्यों-ज्यों मैं युवक होता गया इसके बहने की मात्रा तो कम होती गई पर अब यह जब-तब दर्द दे जाता . दर्द भी ऐसा भयंकर कि वह बताने की बात तो हरगिज़ नहीं . देखने वाले सक्ते में आ जाते . दो-चार महीने पर एकाध बार यह जान लेवा दर्द आ जाता . अब मैं खुद डाक्टरों की दवाएं करने लगा था . वे बड़ी देर-देर तक मेरे कान में कौन सा यंत्र डाले क्या ढूंढ़ते रह जाते यह तो मुझे पता नहीं, पर इतना जरूर पता है कि वे मेरा कान ठीक न कर सके . कुछ समय को बहना बंद भी हो जाता; परन्तु फिर बहने लगता .

यूँ मेरी तन्दुरुस्ती कमज़ोर न थी . मैं अपने को काफी मजबूत समझता व पाता था . काम-धंधे में भी मैं पूरा चुस्त था . मेरे अधिकारी व सहयोगी सभी मेरे काम व मुझसे खुश रहते थे . वैसे तो मैं एक पूर्ण तन्दुरुस्त नवयुवक था, पर जब फरवरी १९६५ की एक रात मुझे दिल का दौरा सा आ गया और मैं गंभीर रूप से बीमार पड़ गया, तो मेरा आत्म-विश्वास ही खो गया जैसे . ज्यों-ज्यों दवा की जाती बीमारी बढ़ती ही जाती . पाचन-संस्थान ने एकदम जवाब दे दिया था . कभी अच्छा कभी बीमार—कुल मिलाकर मैं ६ वर्ष बीमार रहा . जिंदगी और मौत के बीच संघर्ष के बहुत मौके आये . मौत को मैं जानता तो नहीं पर देखा जरूर है उसे . उसकी झलक दिख गई है मुझे, उसकी पगध्वनि सुन ली है मैंने—काफी पास से . हाँ, तो मेरे इस आकस्मिक रूप से बीमार पड़ जाने से पुराने कर्ण-रोग का कहाँ तक हाथ था यह तो मैं नहीं जानता; परंतु इतना तो खूब साफ है कि इस बीमारी

के दौरान कर्ण-रोग और भी उग्र हो आया था . बहना भी ज्यादा हो गया था और दर्द भी जल्दी-जल्दी आने लगा था तथा सदा से भी अति भयंकर . अब दर्द इतना विकराल रूप धारण कर लेता कि मन कहता मैं अपना सिर कहीं ऐसी जगह पटक दूं जहां वह कांच की तरह एकदम चूर-चूर हो जाए . फिर कालान्तर में मेरी सभी बीमारियां पीछे हटीं; परन्तु कान का मर्ज ज्यों का त्यों बना रहा . परन्तु अब दर्द केवल तब होता जब मैं कोई ऐसी दवा करता जिससे कान का बहना बंद हो जाता और घाव पुर जाता . जब तक घाव पुनः खुल न जाता तब तक दर्द होता और इतना तीव्र होता कि अक्सर घाव खुलने के साथ-साथ कुछ खून भी निकल आता कान से . इधर एक बात और हो गई थी . मुझे ऐसा लगने लगा था कि मेरा सिर ही बहना शुरू हो गया है . ऐसी प्रतीति मुझे बढ़ती ही जा रही थी . अब स्थिति मेरे लिए भयावह थी . किसी उपाय से घाव बंद होता तो घोर दर्द का सामना होता जो कि बर्दाश्त के बाहर होता और दवा न करता तो सिर ही बहा जा रहा था . न दवा शुरू करते बने न बंद करते बने . मेरी Psychology बहुत बिगड़ गई . इसी बीच एक महात्मा जी की संगति का भी सुयोग मिला . उनकी भी एक औषधि का प्रयोग किया गया . बूटी उनकी अति चमत्कारिक थी इसकी स्पष्ट अनुभूति मुझे हुई . परन्तु घाव बन्द हो जाने पर जो दिक्कत पैदा होती उसका कोई हल न मिल सका और वह दवा भी फेल हो गई . मेरे दिल और दिमाग घातक रूप से कमजोर पड़ गये थे . ऐसी नाजुक स्थिति में कान का आपरेशन भी न कराया जा सकता था . मेरे शरीर की Elasticity (लोच) पर भी असर पड़ने लगा था . लोच का स्थान एक प्रकार की अकड़न-कठोरता ले रही थी (यद्यपि इस बात का एहसास मुझे तब न हो पाया था . यह तो अब जाहिर हुआ ज्यों-ज्यों लोच वापिस लौटी) . न जाने मेरा कान केन्सर बन जाने की स्टेज पर आ गया था या क्या बात थी, मैं कुछ भी नहीं जानता; पर स्थिति खराब थी और मैं हर तरफ से हताश व निराश था इतना सच है . और ये सारी बातें मुझ तक ही सीमित थीं, इतना सब मैं किसी पर प्रगट न करता था . फिर इन्हीं सारी कठिनाइयों के बीच मेरा परिचय 'ध्यान' से होता है . मैं परेशान तो था ही मेरा ध्यान पूर्ण समर्पण (Complete Surrender) के साथ शुरू होता है . मैं चार चरणों वाला 'सक्रिय-ध्यान' करता था . और ताज्जुब न होना चाहिए कि एक माह भी पूरे न हुए थे कि मेरे बचपन का वह हठीला साथी—मेरे कान का रोग—मुझसे विदा ले गया . घाव बंद, बहना बंद . घाव बंद होने पर पैदा होने वाला दर्द भी बन्द . मैं बड़े अचरज में था . मैं जिसके जाने की सारी आशायें खो चुका था वह बिना किसी प्रयास के ही जा चुका था . ध्यान के दौरान मेरे कान में, कान के इर्द-

गिर्द, सिर में तथा अन्य सभी प्रभावित अंगों में भीतर ही भीतर स्नायु-मंडल में जो-जो क्रियायें मुझे घटित होती महसूस होती थीं उनका बयान तो मैं नहीं कर पाऊंगा परन्तु उन क्रियाओं के जरिए कर्ण-रोग का जाना कुछ इस प्रकार हुआ है कि मैं यह पूरे दावे के साथ कह सकता हूं कि जीवन में इस रोग के फिर लौटने की मुझे कोई संभावना नहीं दिखती . इसे ठीक हुए सात माह हो रहे हैं . कमजोरी भी मेरी हटती ही जा रही है . जहां लिखा हुआ एक वाक्य भी पढ़ना पहाड़ लगने लगा था तथा लिखने के नाम पर अपना नाम व पता भी लिखने में डर लगने लगा था, इतनी कमजोरी थी दिल-दिमाग में, वहां आज मैं इतनी सारी सामग्री तैयार कर आप सबकी सेवा में भेज रहा हूं . इसके पहले भी भेज चुका हूं . पढ़ता भी खूब हूं . और यह सब ध्यान का कमाल है .

सतत जारी ध्यान से मैं निरंतर स्वस्थ होता जा रहा हूं . और बढ़ते हुए स्वास्थ्य के साथ मेरी यह समझ—मेरी अनुभूति गहरी होती जा रही है कि स्वास्थ्य और परमात्म-मिलन दो भिन्न बातें नहीं हो सकतीं . वे एक ही घटना के, एक ही बात के, एक ही स्थिति के दो पर्यायवाची हैं . चरम-स्वास्थ्य का बिन्दु ही परमात्म-मिलन का बिन्दु है . या कहें परमात्म-मिलन का बिन्दु ही चरम-स्वास्थ्य का बिन्दु है . सारा अस्वास्थ्य अध्यान (मूर्छा) के कारण है . स्वस्थ होने के लिए इस जगती-तल पर ध्यान (जागरण) के अतिरिक्त अन्य कोई मार्ग नहीं . हां, मार्गों के भ्रम जरूर हैं . इसलिए मैं सारे अस्वस्थ लोगों का आह्वान करता हूं (और यह सचाई है कि अस्वस्थ हम सब हैं, परन्तु यह शब्द हम केवल उसी के लिए प्रयोग में लाते हैं जो अस्वास्थ्य के उस बिन्दु पर जा खड़ा होता है जहां उसकी दवा प्रारंभ करनी पड़ती है . और यह बात एकदम अलग है कि हमारा सारा औषधि-विज्ञान, सारी-दवायें,सारी पैथीज अस्वास्थ्य को केवल झुठलाने के लिए हैं . कोई दवा अस्वस्थता-नाश कैसे कर सकती है ? कोई दवा स्वस्थ कैसे कर सकती है ? और फिर जिस दवा से अस्वास्थ्य जितना ज्यादा झुठला उठता है, दबा उठता है उसे हम उतनी ही कारगर मानने लगते हैं .) हां, तो मेरा सभी तरह के अस्वस्थ लोगों का आह्वान है कि उतरो ध्यान में—बंद कर दो सारी दवाओं को, छोड़ दो सारी पैथीज़ का भ्रम-जाल—कूद पड़ो ध्यान में . वह निश्चित ही परमात्म-मिलन तक ले चलने वाला है—जहां है स्वास्थ्य ही स्वास्थ्य...बस स्वास्थ्य ही स्वास्थ्य...बस स्वा...ऐसा मुझे लगता है .

सबको प्रणाम .

—लाल प्रताप

[गांव-भुरहा, पत्रालय-सांगीपुर, जिला-प्रतापगढ़ (उ० प्र०)]

ज्योतिष-गणना

[पिछले अंक में भगवान श्री के साथ श्री महीपाल जी की भेंट-वार्त्ता का 'ज्योतिष-गणना' पर आपने एक अंश पढ़ा . उसी क्रम में यह आगे का अंश प्रस्तुत है .]

प्रस्तुतकर्ता : **स्वामी योग चिन्मय, बम्बई**

वैज्ञानिक अभी दस वर्षों में एक नई बात कह रहे हैं और वह यह कि प्रत्येक प्राणी के पास कोई ऐसी अन्तर-इन्द्रिय है जो जागतिक प्रभावों को अनुभव करती है . शायद मनुष्य के पास भी है, लेकिन मनुष्य ने अपनी बुद्धिमानी में उसे खोया . मनुष्य अकेला प्राणी है जगत पर जिसके पास बहुत-सी चीजें हैं जो उसने बुद्धिमानी में खो दीं और बहुत-सी चीजें जो उसके पास नहीं थीं उसने बुद्धिमानी में उनको पैदा करके खतरा मोल ले लिया . जो है उसे खो दिया है, जो नहीं है उसे बना लिया . लेकिन छोटे-छोटे प्राणी के पास भी कुछ संवेदना के अन्तर्स्रोत हैं और अब इसके लिए वैज्ञानिक आधार मिलने शुरू हो गये हैं कि अन्तर-स्रोत हैं . ये अन्तर-स्रोत इस बात की खबर लाते हैं कि इस पृथ्वी पर जो जीवन है वह 'आइसोलेटिड' नहीं है, वह सारे ब्रह्माण्ड से संयुक्त है . और कहीं भी कुछ घटना घटती है तो उसके परिणाम यहां होने शुरू हो जाते हैं . जैसा मैं आप से कह रहा था पैरासिम्पैथेटिक की मान्यता का . आधुनिक चिकित्सक भी इस नतीजे पर पहुंच रहे हैं कि जब भी सूर्य पर अनेक बार धब्बे प्रगट होते हैं, ऐसे भी सूर्य पर कुछ धब्बे, 'डार्क स्पाट्स' होते हैं . कभी वह बढ़ जाते हैं, कभी वह कम हो जाते हैं . जब सूर्य पर स्पाट्स बढ़ जाते हैं, तो जमीन पर बीमारियां बढ़ जाती हैं . और जब सूर्य पर स्पाट्स कम हो जाते हैं, तो जमीन पर बीमारियाँ कम हो जाती हैं . और जमीन से हम बीमारियां कभी न मिटा सकेंगे जब तक सूर्य के स्पाट्स कायम हैं . हर ग्यारह वर्ष में सूरज पर विस्फोट होते हैं और उत्पात होते हैं, तो पृथ्वी पर युद्ध और उत्पात होते हैं . पृथ्वी पर युद्धों का जो क्रम है, वह हर दस वर्ष का है . महामारियों का जो क्रम है, वह दस और ग्यारह वर्ष के बीच का है . क्रांतियों का जो क्रम है, दस और ग्यारह वर्ष के बीच का है . एक बार ख्याल में आना शुरू हो जाय कि हम अलग और पृथक नहीं हैं, संयुक्त हैं, 'आर्गेनिक'

हैं, तो फिर ज्योतिष को समझना आसान हो जायेगा इसलिए मैं ये सारी बातें आप से कह रहा हूं .

कुछ आदमियों को ऐसा ख्याल पैदा हो गया था, अब भी है, कि ज्योतिष एक 'सुपर्स्टीशन,' एक अंधविश्वास है . बहुत दूर तक यह बात सच भी मालूम पड़ती है . असल में वही चीज अंधविश्वास मालूम पड़ने लगती है, जिसके पीछे हम वैज्ञानिक कारण बताने में असमर्थ हो जायें . वैसे ज्योतिष बहुत वैज्ञानिक है और विज्ञान का अर्थ ही होता है कि 'काज़ और एफेक्ट' के बीच, कार्य और कारण के बीच सम्बन्ध की तलाश . ज्योतिष कहता यही है कि इस जगत में जो भी घटित होता है उसके कारण हैं . हमें ज्ञान न हो, यह हो सकता है . ज्योतिष यह कहता है कि भविष्य जो भी होगा, वह अतीत से विच्छिन्न नहीं हो सकता, उससे जुड़ा हुआ होगा . आप कल जो भी होंगे वह आज का ही जोड़ होगा . आज तक आप जो हैं वह बीते हुए कल का जोड़ है. ज्योतिष बहुत वैज्ञानिक चिन्तन है . वह यह कहता है कि भविष्य अतीत से ही निकलेगा . आपका आज कल से निकला है, आपका आने वाला कल आज से निकलेगा . और ज्योतिष भी यह कहता है कि कल होने वाला है, वह किसी सूक्ष्म अर्थों में आज भी हो जाना चाहिए . अब इसे थोड़ा समझें .

अब्राहम लिंकन ने मरने के तीन दिन पहले एक सपना देखा, जिसमें उसने देखा कि उसकी हत्या कर दी गयी . और व्हाइट हाउस के एक खास कमरे में उसकी लाश पड़ी हुई है . उसने नम्बर भी कमरे का देखा . उसकी नींद खुल गई, वह हंसा . उसने अपनी पत्नी से कहा कि मैंने एक सपना देखा है कि मेरी हत्या कर दी गई है . फलां-फलां नम्बर, उसी मकान में तो वह सोया हुआ है व्हाइट हाउस के . इस मकान के फलां नम्बर के कमरे में मेरी लाश पड़ी है . मेरे सिरहाने तू खड़ी हुई है और आस-पास फलां-फलां लोग खड़े हुए हैं . हंसी हुई, बात हुई . लिंकन सो गया, पत्नी सो गई . तीन दिन बाद लिंकन की हत्या हुई और उसी नम्बर के कमरे में और उसी जगह उसकी लाश तीन दिन बाद पड़ी थी . और उसी क्रम में आदमी खड़े थे .

अगर तीन दिन बाद जो होने वाला है वह किसी अर्थों में आज ही न हो गया हो तो उसका सपना कैसे निर्मित हो सकता है . उसकी सपने में झलक भी कैसे मिल सकती है . सपने में झलक तो उसी बात की मिल सकती है, जो किसी अर्थ में अभी भी कहीं मौजूद हो . तो हम उसकी एक 'ग्लिम्प्स,' एक झलक खिड़की खोलें और हमें दिखाई पड़ जाय, लेकिन खिड़की के बाहर मौजूद न हो; लेकिन कहीं मौजूद हो . ज्योतिष का मानना है कि भविष्य हमारा अज्ञात है, इसलिए भविष्य है . अगर हमें ज्ञान हो तो भविष्य जैसी कोई घटना नहीं है . वह अभी भी कहीं मौजूद है .

महावीर के जीवन में एक घटना का उल्लेख है, जिस पर एक बहुत बड़ा विवाद चला . और महावीर के सामने ही महावीर के अनुयायियों का एक वर्ग टूट गया . और पांच सौ महावीर के अनुयायियों ने अलग पंथ का निर्माण कर लिया उसी बात से . महावीर कहते थे, जो हो रहा है, वह एक अर्थ में हो ही गया . अगर आप चल पड़े, तो एक अर्थ में पहुंच ही गये . अगर आप बूढ़े हो रहे हैं, तो एक अर्थ में बूढ़े हो ही गये . महावीर कहते थे, जो हो रहा है, जो क्रियमान है—वह हो ही गया . महावीर का एक शिष्य वर्षा-काल में महावीर से दूर था, बीमार था . उसने अपने एक शिष्य को कहा कि मेरे लिए चटाई बिछा दो . उसने चटाई बिछानी शुरू की . मुड़ी हुई गोल, लपटी हुई चटाई को उसने थोड़ा-सा खोला, तब महावीर के उस शिष्य को ख्याल आया कि, ठहरो महावीर कहते हैं, जो हो रहा है, वह हो ही गया . तू आधे में रूक जा . चटाई खुल तो रही है; लेकिन खुल नहीं गयी . रुक जा. उसे अचानक ख्याल हुआ कि यह तो महावीर बड़ी गलत बात कहते हैं , चटाई आधी खुली है, लेकिन खुल कहां गयी . उसने चटाई वहीं रोक दी . वह लौटकर वर्षाकाल के बाद महावीर के पास आया और उसने कहा कि आप गलत कहते हैं कि जो हो रहा है वह हो ही गया . क्योंकि चटाई अभी भी आधी खुली रखी है; खुल रही थी, लेकिन खुल नहीं गयी, तो मैं आपकी बात गलत सिद्ध करने आया हूं . महावीर ने उससे जो कहा—वह नहीं समझ पाया होगा . बहुत बाल-बुद्धि का रहा होगा अन्यथा ऐसी बात लेकर नहीं आता . महावीर ने कहा, तूने रोका, रोक ही रहा था और रुक ही गया . वह जो चटाई तूने रोकी, रोक रहा था, रुक गया . तूने सिर्फ चटाई रुकते देखी, एक और क्रिया भी साथ चल रही थी, वह हो गयी . और फिर कब तक तेरी चटाई रुकी रहेगी ? खुलनी शुरू हो गयी, खुल ही जायेगी . तू लौटकर जा . वह जब लौटकर गया तो देखा, एक आदमी खोलकर उस पर लेटा हुआ है, विश्राम कर रहा है . इस आदमी ने सब गड़बड़ कर दिया . पूरा सिद्धान्त ही खराब कर दिया . महावीर जब यह कहते थे कि जो हो रहा है, वह हो ही गया, तो वह यह कहते थे, जो हो रहा है वह तो वर्तमान है, जो हो गया वह भविष्य है . कली खिल रही है, खिल ही गयी, खिल ही जायेगी . वह फूल तो भविष्य में बनेगी . अभी तो खिल ही रही है, अभी तो कली ही है . लेकिन जब खिल ही रही है तो खिल जायेगी . उसका खिल जाना भी कहीं घटित हो गया . अब इसे हम जरा और तरह से देखें, थोड़ा कठिन पड़ेगा .

हम सदा अतीत से देखते हैं . कली खिल रही है . हमारा जो चिंतन है आमतौर से, वह 'पास्ट ओरिएंटेड' है, वह अतीत से बंधा है . कहते हैं,

कली खिल रही है, फूल की तरफ जा रही है . कली फूल बनेगी . लेकिन इससे उल्टा भी हो सकता है . यह ऐसा है जैसा में आपको पीछे से धक्का दे रहा हूं, आपको आगे सरका रहा हूं . ऐसा भी हो सकता है, कोई आपको आगे से खींच रहा है . गति दोनों तरह हो सकती है . मैं आपको पीछे से धक्का दे रहा हूं, आप आगे जा रहे हैं . ऐसा भी हो सकता है, कोई आपको आगे से खींच रहा है, पीछे से कोई धक्का नहीं दे रहा और आप आगे जा रहे हैं . ज्योतिष का मानना है कि यह अधूरी दृष्टि है कि अतीत धक्का दे रहा है और भविष्य हो रहा है . पूरी दृष्टि यह है कि अतीत धक्का दे रहा है और भविष्य खींच रहा है , कली फूल बन रही है, इतना ही नहीं है, फूल कली को फूल बनने के लिए पुकार भी रहा है—खींच भी रहा हैं. अतीत पीछे है, भविष्य आगे है . अभी वर्तमान के क्षण में एक कली है . पूरा अतीत धक्का दे रहा है कि खुल जाओ . पूरा भविष्य आह्वान दे रहा है, खुल जाओ . अतीत और भविष्य दोनों के दबाव में कली फूल बनेगी .अगर कोई भविष्य न हो तो अतीत अकेला फूल न बना पायेगा; क्योंकि भविष्य में अवकाश चाहिए फूल बनने के लिए . भविष्य में जगह चाहिए, स्पेस चाहिए . भविष्य स्थान दे तो ही कली फूल बन पायेगी . अगर कोई भविष्य न हो तो अतीत कितना ही सिर मारे, कितना ही धकाये कुछ न होगा . मैं आपको पीछे से कितना ही धक्का दूं, लेकिन सामने एक दीवाल हो तो मैं आपको आगे न हटा पाऊंगा . आगे जगह चाहिए, मैं धक्का दूं और आगे की जगह आपको स्वीकार कर ले, आमंत्रण दे दे कि आ जाओ, अतिथि बना ले तो ही मेरा धक्का सार्थक हो पायेगा . मेरे धक्के के लिए भविष्य में जगह चाहिए . अतीत काम करता है, भविष्य जगह देता है . ज्योतिष की दृष्टि यह है कि अतीत पर खड़ी हुई दृष्टि अधूरी है, आधी वैज्ञानिक है । भविष्य पूरे वक्त पुकार रहा है—पूरे वक्त खींच रहा है . हमें पता नहीं है, हमें दिखाई नहीं पड़ता—यह हमारी आंख की कमजोरी, यह हमारी दृष्टि की कमजोरी है कि हम दूर नहीं देख पाते, हमें कल कुछ भी दिखायी नहीं पड़ता .

कृष्णमूर्ति की जन्म कुण्डली देखें कभी तो हैरान होंगे . अगर एनीबीसेंट और लीडबीटर ने फिक्र की होती और कृष्णमूर्ति की जन्म-कुंडली देख ली होती, तो भूलकर भी कृष्णमूर्ति के साथ मेहनत नहीं करनी चाहिए थी . क्योंकि जन्म-कुण्डली में साफ है बात कि कृष्णमूर्ति जिस संगठन से संबंधित होंगे, वे उस संगठन को नष्ट करने वाले होंगे—जिस संस्था से संबंधित होंगे, उस संस्था को विसर्जित करवा देंगे—जिस संगठन के सदस्य

बनेंगे, वह संगठन मर जायेगा . लेकिन एनीबीसेंट भी मानने को तैयार नहीं होती . कोई सोच भी नहीं सकता था, लेकिन हुआ यही । थियोसाफी ने उन्हें खड़ा करने की कोशिश की, थियोसाफी को उनकी वजह से इतना धक्का लगा कि वह सदा के लिए मर गया आन्दोलन . फिर एनीबीसेन्ट ने 'स्ट्रार आफ द ईस्ट' नाम से बड़ी संस्था की स्थापना की, पर एक दिन कृष्णमूर्ति उस संस्था को विसर्जित करके अलग हो गये . एनीबीसेंट ने पूरा जीवन उस संस्था को खड़ा करने में समर्पित किया और नष्ट किया अपने को . लेकिन उसमें कृष्णमूर्ति का भी कुछ बहुत हाथ नहीं है . वह जिन नक्षत्रों की छाया में पैदा हुए हैं, वह नक्षत्रों की सीधी सूचना है . वह किसी भी संस्था में 'डिस्ट्रेक्टिव' सिद्ध होंगे—किसी भी संस्था के भीतर वह विघटनकारी सिद्ध होगे .

भविष्य एक दम अनिश्चित नहीं है . हमारा ज्ञान अनिश्चित है . हमारा अज्ञान भारी है . भविष्य में हमें कुछ दिखाई नहीं पड़ता . हम अन्धे हैं . भविष्य में हमें कुछ भी दिखाई नहीं पड़ता . नहीं दिखाई पड़ता है इस-लिए हम कहते हैं कि निश्चित नहीं है . लेकिन भविष्य में दिखाई पड़ने लगे और ज्योतिष भविष्य में देखने की प्रक्रिया है, तो ज्योतिष सिर्फ इतनी ही बात नहीं है कि ग्रह-नक्षत्र क्या कहते हैं, उनकी गणना क्या कहती है ? यह तो सिर्फ ज्योतिष का एक 'डायमेंशन' है, एक आयाम है . फिर भविष्य को जानने के और आयाम भी हैं . मनुष्य के हाथ पर खिंची हुई रेखाएं हैं, मनुष्य के माथे पर खिंची हुई रेखायें हैं, मनुष्य के पैर पर खिंची हुई रेखाएं हैं . पर यह भी बहुत ऊपरी है . मनुष्य के शरीर में छिपे हुए चक्र हैं . उन सब चक्रों का अलग-अलग संवेदन है . उन सब चक्रों की प्रतिपल अलग-अलग गति है, 'फ्रीक्वेंसी' उनकी जांच है . मनुष्य के पास छिपा हुआ अतीत का पूरा संस्कार बीज है . रान हूबार्ड ने एक नया शब्द, एक नई खोज पश्चिम में शुरू की है. पूरब के लिए तो बहुत पुरानी है . वह खोज है—'टाइम ट्रेंक' . हूबार्ड का ख्याल है कि प्रत्येक व्यक्ति जहां भी जिया है—इस पृथ्वी पर या कहीं और किसी ग्रह पर, आदमी की तरह या जानवर की तरह, पौधे की तरह या पत्थर की तरह—अनंत यात्रा में वह पूरा का पूरा 'टाइम ट्रेक' समय की पूरी की धारा उसके भीतर अभी संरक्षित है . वह धारा खोली जा सकती है . और उस धारा में आदमी को पुनः प्रवाहित किया जा सकता है . हूबार्ड की खोजों में यह खोज बड़ी कीमत की है . इस 'टाइम ट्रेक' पर हूबार्ड ने कहा है कि आदमी के भीतर 'एनग्रेव्ह्स' हैं . एक तो हमारे पास स्मृति है, जिसमें हम, याद रखते हैं कि कल क्या हुआ, परसों क्या हुआ . यह स्मृति काम चलाऊ है,

यह रोजमर्रा की है . जैसे हर आदमी दुकान पर या आफिस में रोजमर्रा की बही रखता है— वह काम चलाऊ है . वह रोज बेकार हो जाती है . वह असली नहीं है . वह स्थायी नहीं है . यह हमारी कामचलाऊ की स्मृति है, जिसमें हम रोज काम करते हैं, फिर रोज फेंक देते हैं . पर इससे गहरी एक स्मृति है, जो काम चलाऊ नहीं है, जो हमारे जीवन के समस्त अनुभवों का सार है, अनंत-अनंत जीवन पथों पर लिए गये अनुभवों का सार इकट्ठा है . उसे हूबार्ड ने 'एनग्रेव्ह्स' कहा है . वह हमारे भीतर 'एनग्रेव्ह्ड' हो गयी है . वह भीतर गहरे में दबी हुई पड़ी है पूरी की पूरी . जैसे कि एक टेप बन्द आपके खीसे में पड़ा हो . उसे खोला जा सकता है . और जब उसे खोला जाता है तो महावीर उसको कहते थे जाति स्मरण . हूबार्ड कहता है 'टाइम ट्रेक'—पीछे लौटना समय में . जब उसे खोला जाता है तो ऐसा नहीं होता कि आपको अनुभव हो कि आप 'रिमेम्बर' कर रहे हैं—ऐसा नहीं होता है कि आप याद कर रहे हैं; 'यू-रीलिव' . जब वह खुलती है, जब टाइम ट्रेक खुलता है तो आपको ऐसा अनुभव नहीं होता है कि मुझे याद आ रहा है . न, आप पुनः जीते हैं . समझ लें, अगर टाइम ट्रेक आपका खोला जाय, जो खोलना बहुत कठिन नहीं है और ज्योतिष उसके बिना अधूरा है . ज्योतिष की बहुत गहनतम जो पकड़ है, वह तो आपके अतीत के खोलने की है; क्योंकि आपका अतीत अगर पूरा पता चल जाय तो आपका पूरा भविष्य पता चलता है . क्योंकि आपका भविष्य आपके अतीत से जन्मेगा . आपके भविष्य को आपके अतीत को जाने बिना नहीं जाना जा सकता . क्योंकि आपका भविष्य आपके अतीत का बेटा होने वाला है, उसी से पैदा होगा . तो पहले तो आपके अतीत की पूरी स्मृति-रेखा को खोलना पड़ेगा . अगर आपकी स्मृति-रेखा को खोल दिया जाय, जिसकी प्रक्रियाएं हैं और विधियां हैं, तो आप अगर समझ लें कि आपको याद आ रहा है कि आप छः वर्ष के बच्चे हैं और आपके पिता ने चांटा मारा है, तो आपको ऐसा याद नहीं आयेगा कि आपको याद आ रहा है कि आप छः वर्ष के बच्चे हैं और पिता चांटा मार रहे हैं; 'यू विल रीलीव इट', आप इसको पुनः जियेंगे और जब आप इसको जी रहे होंगे, अगर उस वक्त मैं आपको पूछूं कि तुम्हारा नाम ? तो आप कहेंगे बबलू, आप नहीं कहेंगे पुरुषोत्तमदास . छः वर्ष का बच्चा उत्तर देगा . आप 'रीलिव' कर रहे हैं, उस वक्त आप स्मरण नहीं कर रहे हैं, पुरुषोत्तमदास स्मरण नहीं कर रहे हैं कि जब मैं छः वर्ष का था . न, पुरुषोत्तमदास छः वर्ष के हो गये . वह कहेंगे बबलू . उस वक्त वह जो-जो जवाब देंगे, वह छः वर्ष का बच्चा बोलेगा . अगर आपको पिछले जन्म में ले जाया गया है और आप याद कर रहे हैं कि आप एक सिंह हैं, तो अगर उस वक्त आपको छेड़ दिया जाय तो आप बिल्कुल

सिंह की तरह गर्जना कर पड़ेंगे . आप आदमी की तरह नहीं बोलेंगे . हो सकता है आप नाखून-पंजों से हमला बोल दें . अगर आप याद कर रहे हैं कि आप एक पत्थर हैं और आप से कुछ पूछा जाय, तो आप बिल्कुल मौन रह जायेंगे, आप बोल नहीं सकते— आप पत्थर की तरह ही रह जायेंगे .

हूबार्ड ने हजारों लोगों की सहायता की है . जैसे एक आदमी है जो ठीक से नहीं बोल पाता, हूबार्ड का कहना है कि वह बचपन की किसी स्मृति पर 'स्टक' हो गया, उसके आगे नहीं बढ़ पाया . तो वह उसके 'टाइम ट्रेक' पर उसको वापस ले जायेगा, उसके 'एनग्रेव' को तोड़ेगा और जब वह छः वर्ष का हो जाएगा, जहां स्मृति रुक गई थी, जहां से वह आगे नहीं बढ़ा; फिर जहां वह वापस पहुंच जाएगा, टूट जाएगी धारा—वह आदमी वापस लौट आएगा, तब वह तीस साल का हो जाएगा . वह जो बीच में फासला था चौबीस साल का, वह उसको पार कर देगा और हैरानी की बात है कि हजारों दवाइयां उस आदमी को बोलने में समर्थ नहीं बना पायेंगी; लेकिन 'टाइम ट्रेक' पर लौट के जाना और पुनः वापस लौट आना, वह आदमी बोलने में समर्थ हो जायेगा . आपको बहुत दफे जो बीमारियां आती हैं वह केवल 'टाइम ट्रेक' की वजह से आती हैं . बहुत-सी बीमारियां हैं, जैसे दमा . दमा के मरीज की तारीख भी तय रहती है . हर साल ठीक वक्त पर ठीक तारीख पर उसका दमा लौट आता है और इसलिए दमा के लिए कोई चिकित्सा नहीं हो पाती . क्योंकि दमा असल में शरीर की बीमारी नहीं है, 'टाइम ट्रेक' की बीमारी है, कहीं 'स्टक' हो गयी, कहीं 'मेमोरी' अटक गयी है और जब फिर वही वह आदमी उस समय को स्मरण कर लेता है १२ तारीख, बरसा का दिन, उसको बारह तारीख आई, बरसा का दिन आया वह तैयारी कर रहा है, वह घबड़ा रहा है कि अब होने वाला है . आप हैरान होंगे कि इस बार उसको जो दमा होगा—'ही इज़ रीलिविंग'— वह दमा नहीं है; वह सिर्फ पिछले साल की बारह तारीख को 'रीलिव' कर रहा है . मगर अब उसका आप इलाज करेंगे, आप उसको झंझट में डाल रहे हैं . उसका इलाज करने से कोई मतलब नहीं है; क्योंकि वह एक साल पहले वाला आदमी अब है ही नहीं जिसका इलाज किया जा सके . आप दवाएं बेकार खो रहे हैं, क्योंकि दवाएं उस आदमी में जा रही हैं जो अभी है और बीमार वह आदमी है जो एक साल पहले था . इन दोनों के बीच कोई तारतम्य नहीं है, कोई सम्बन्ध नहीं है . आपकी हर दवा की असफलता उसके दमा को मजबूत कर जायेगी और कह जायगी कि कुछ नहीं होने वाला है . वह अगले साल की तैयारी फिर कर

रहा है . सौ में से सत्तर बीमारियां 'टाइम ट्रेक' पर घटित हो गईं, पकड़ गईं, जकड़ गई बातें हैं जो हम लौट-लौटकर जी लेते हैं .

ज्योतिष सिर्फ नक्षत्रों का अध्ययन नहीं है . वह तो है ही . वह तो बात करेंगे . साथ ही ज्योतिष और अलग-अलग आयामों से मनुष्य के भविष्य को टटोलने की चेष्टा है . वह भविष्य कैसे पकड़ा जा सके . उसे पकड़ने के लिए अतीत को पकड़ना जरूरी है . उसे पकड़ने के लिए अतीत के जो चिन्ह आपके शरीर पर और आप के मन पर छूट गये हैं, उन्हें पहचानना जरूरी है . आपके शरीर पर भी चिन्ह हैं . आपके मन पर भी चिन्ह हैं . और जब से ज्योतिषी शरीर के चिन्हों पर बहुत अटक गये हैं तब से ज्योतिष की गहराई खो गयी; क्योंकि शरीर के चिन्ह बहुत ऊपरी हैं . आपके हाथ की रेखा तो आपके मन के बदलने से इसी वक्त भी बदल सकती है . आपकी आयु की जो रेखा है, अगर आपको भरोसा दिलवा दिया जाय 'हिप्नोटाइज' करके कि आप १५ दिन बाद मर जाओगे और आपको रोज बेहोश करके पन्द्रह दिन तक यह भरोसा पक्का बिठा दिया जाय कि आप पन्द्रह दिन बाद मर जाओगे, आप चाहे मरो या न मरो, आपकी उम्र की रेखा पन्द्रह दिन के समय पर पहुंचकर टूट जायेगी—आपकी उम्र की रेखा में गैप आ जायेगा . शरीर स्वीकार कर लेगा कि ठीक है मौत आती है . शरीर पर जो रेखायें हैं वह तो बहुत ऊपरी घटनायें हैं . भीतर गहरे में मन है और जिस मन को आप जानते हैं वही गहरे में नहीं है; वह तो बहुत ऊपर है . बहुत गहरे में तो वह मन है, जिसका आपको पता नहीं है .

इस शरीर में भी गहरे में जो चक्र हैं, जिनको योग चक्र कहता है, वह चक्र आपकी जन्मों-जन्मों की सम्पदा का संग्रहीत रूप है . आपके चक्र पर हाथ रखकर जो जानता है वह जान सकता है कि कितनी गति है उस चक्र की . आपके सातों चक्रों को छूकर जाना जा सकता है कि आपने कुछ अनुभव किये हैं कभी या नहीं . मैंने सैकड़ों लोगों के चक्रों पर प्रयोग किया है . तो मैं हैरान हुआ कि एकाध या ज्यादा से ज्यादा दो चक्रों के सिवाय आमतौर से तीसरा चक्र शुरू ही नहीं होता, उसने गति नहीं की है कभी, वह बन्द ही पड़ा है—उसका कभी आपने उपयोग ही नहीं किया . तो वह आपका अतीत है . उसे जानकर अगर एक आदमी मेरे पास आये और मैं देखूं कि उसके सातों चक्र चल रहे हैं, तो उससे कहा जा सकता है कि यह तुम्हारा अंतिम जीवन है—अगला जीवन नहीं होगा . क्योंकि सात चक्र चल गये हों, तो अगले जीवन का अब कोई उपाय नहीं है . इस जीवन में निर्वाण हो जायेगा,

मुक्ति हो जायेगी . महावीर के पास कोई आता तो वे फिक्र करते इस बात की कि उस आदमी के कितने चक्र चल रहे हैं . उसके साथ कितनी मेहनत करनी उचित है, क्या हो सकेगा उसके साथ ? मेहनत करने का कोई परिणाम होगा या नहीं होगा ? या कब हो पायेगा ? या कितने जन्म लगेंगे ? भविष्य को टटोलने की चेष्टा है ज्योतिष में अनेक-अनेक मार्गों से . उसमें एक मार्ग, जो सर्वाधिक प्रचलित हुआ, वह ग्रह-नक्षत्रों का प्रभाव मनुष्य के ऊपर . उसके लिए वैज्ञानिक आधार रोज-रोज मिलते चले जाते हैं . इतना तय हो गया है कि जीवन प्रभावित है . और जीवन अप्रभावित नहीं हो सकता है . दूसरी बात ही कठिनाई की रह गयी कि क्या व्यक्तिगत रूप से एक-एक 'इण्डीवीजुअल' प्रभावित है ?

यह चिन्ता जरा वैज्ञानिकों को लगती है कि एक-एक व्यक्ति तीन अरब, चार अरब आदमी हैं जमीन पर . क्या एक-एक आदमी अलग-अलग ढंग से, लेकिन उनको कहना चाहिए, यह इतनी परेशानी की बात क्या है . अगर प्रकृति एक-एक आदमी को अलग-अलग ढंग का अंगूठा दे सकती है, 'इण्डीवीजुअल' और 'रिपीट' नहीं करती . इतनी बारीकी से हिसाब रख सकती है प्रकृति कि एक-एक आदमी को अंगूठा देती है वह, 'इण्डीवीजुअल', उसकी छाप किसी दूसरे आदमी की छाप फिर कभी नहीं होती . अभी ही नहीं, कभी नहीं होती . जमीन पर अरबों आदमी रहे हैं और अरबों आदमी रहेंगे; लेकिन मेरे अंगूठे की जो छाप है वह दोबारा फिर नहीं होगी . आप हैरान होंगे, मैंने एक अण्डे के दो जुड़वां बच्चों की बात कही—उनके भी दोनों अंगूठे एक नहीं होते, उनके भी दोनों अंगूठों की छाप अलग होती है . अगर प्रकृति एक-एक आदमी को इतना व्यक्तित्व दे पाती है, अंगूठे जैसी बेकार चीज को—हम सबको, जो बेकार ही हैं, कुछ खास प्रयोजन का नहीं मालूम पड़ता, उसको इतनी विशिष्टता दे पाती है, तो एक-एक व्यक्ति को आत्मा और विशिष्ट जीवन न दे पाये, कोई कारण नहीं मालूम होता . पर विज्ञान बहुत धीमी गति से चलता है . और ठीक है, वैज्ञानिक होने के लिए उतनी धीमी गति ठीक है. जब तक तथ्य पूरी तरह सिद्ध न हो जाय तब तक इंच भी आगे सरकना उचित नहीं है . प्रॉफिट्स, पैगम्बर तो छलागें भर लेते हैं . वह हजारों सालों,लाखों साल बाद जो तय होगी उसको कह देते हैं . विज्ञान तो एक एक इंच सरकता है . और प्रायमरी स्कूल के बच्चे के दिमाग में जो बात आ सके वही बात --वह बात नहीं जो कि 'प्रॉफिट्स और व्हिजनरीज़', सपने देखने वाले लोग, जो दूर-दूर की चीजें देखते थे, उनकी समझ में आ सके उतनी बात . नहीं, उससे विज्ञान का उतना प्रयोजन नहीं है .

ज्योतिष मूलतः चूंकि भविष्य की तलाश है और विज्ञान चूंकि मूलतः अतीत की तलाश है, विज्ञान इसी बात की खोज है कि 'काज़' क्या है, कारण क्या है, और ज्योतिष इसी बात की खोज है कि 'इफेक्ट' क्या होगा, परिणाम क्या होगा ? इन दोनों के बीच बड़ा भेद है . लेकिन फिर विज्ञान को रोज-रोज अनुभव होता है और कुछ बातें जो अनहोनी लगती थीं, लगती थीं कभी सही नहीं हो सकतीं, वह सही होती हुई मालूम पड़ती हैं . जैसा मैंने पीछे आपको कहा, अब वैज्ञानिकों ने इसको स्वीकार कर लिया है कि प्रत्येक व्यक्ति अपने जन्म के साथ 'बिल्ट इन,' अपना व्यक्तित्व लेकर पैदा होता है—इसको पहले वह नहीं मानने को राजी थे . ज्योतिष इसे सदा से कहता रहा है . जैसे समझें—एक बीज है, आम का बीज है, आम के बीज के भीतर किसी न किसी रूप में जब हम आम के बीज को बो देंगे, तो जो वृक्ष पैदा होता है उसका 'बिल्ट इन प्रोग्रेम' होना चाहिए . उसका 'ब्लू प्रिन्ट' होना चाहिए, नहीं तो यह आम का बीज बेचारा न कोई विशेषज्ञों की सलाह लेता है, न किसी युनिवर्सिटी में शिक्षा पाता है, यह आम के वृक्ष को कैसे पैदा कर लेता है ! फिर उसमें वैसे ही पत्ते लग जाते हैं ; फिर इसमें वैसे ही आम लग जाते हैं . इस बीज की गुठली के भीतर छिपा हुआ कोई पूरा का पूरा प्रोग्रेम चाहिए, नहीं तो बिना प्रोग्रेम के यह बीज क्या कर पायेगा . इसके भीतर सब मौजूद चाहिए . जो भी वृक्ष में होगा वह कहीं न कहीं छिपा ही होना चाहिए . हमें दिखायी नहीं पड़ता, काट-पीटकर हम देख लेते हैं . कहीं दिखाई नहीं पड़ता . लेकिन होना तो चाहिए अन्यथा आम के बीज से फिर नीम निकल सकती है, भूल-चूक हो जाती; लेकिन कभी भूल-चूक होती दिखाई नहीं पड़ती . आम ही निकल आता है . सब 'रिपीट' हो जाता है, सब वही पुनरावृत्ति हो जाती है . इस छोटे से बीज में अगर सारी की सारी सूचनाएं छिपी हुई नहीं है कि इस बीज को क्या करना है, कैसे अंकुरित होना है, कैसे पत्ते, कितनी शाखायें कितना बड़ा वृक्ष, कितनी उम्र का वृक्ष कितना ऊंचे उठेगा— यह सब इसमें छिपा होना चाहिए . कितने फल लगेंगे, कितने मीठे होंगे, पकेंगे कि नहीं पकेंगे—यह सब इसके भीतर छिपा होना चाहिए . अगर आम के बीज के भीतर यह सब छिपा है, तो आप जब मां के पेट में आते हैं तो आपके बीज में सब छिपा नहीं होगा ? अब वैज्ञानिक स्वीकार करते हैं कि आँख का रंग छिपा होगा, बाल का रंग छिपा होगा . शरीर की ऊंचाई छिपी होगी, स्वास्थ्य-अस्वास्थ्य की संभावनाएं छिपी होंगी, बुद्धि का अंक छिपा होगा; क्योंकि इसके सिवाय कोई उपाय नहीं है कि आप विकसित कैसे होंगे ? आपके पास प्रोग्रेम चाहिए . कोई हड्डी कैसे हाथ बन जायगी, कोई हड्डी कैसे पैर बन जायगी . चमड़ी का एक हिस्सा आँख बन जायगा, एक कान बन जायगा.

एक हड्डी सुनने लगेगी, एक हड्डी देखने लगेगी . यह सब कैसे होगा ? वैज्ञानिक पहले कहते थे, सब संयोग है; लेकिन संयोग शब्द बहुत अवैज्ञानिक मालूम पड़ता है . संयोग का मतलब 'चांस,' तो फिर कभी पैर देखने लगे और कभी हाथ सुनने लगे . तो इतना संयोग नहीं मालूम पड़ता . इतना व्यवस्थित मालूम पड़ता है . ज्योतिष ज्यादा वैज्ञानिक बात कहता है . ज्योतिष कहता है, सब बीज को उपलब्ध है . हम अगर बीज को पढ़ पायें, अगर हम बीज से पूछ सकें कि तेरे इरादे क्या हैं, तो हम आदमी के बाबत घोषणाएं कर सकते हैं . वृक्षों के बाबत तो वैज्ञानिक घोषणा करने लगे हैं. बीस साल में आदमी के बाबत बहुत-सी घोषणाएं वे करने लगेंगे और अब तक हम सब समझते रहे कि 'सुपरस्टीशस' है ज्योतिष . अगर घोषणा विज्ञान करेगा तो वह ज्योतिष हो जायेगा . विज्ञान घोषणा करने लगेगा .

बहुत पुराने ज्योतिषी, ज्योतिष का पुराने से पुराना 'इजिप्शियंस' एक ग्रंथ है, जिसको पैथोगोरस ने पढ़कर यूनान में ज्योतिष को पहुंचाया . वह ग्रंथ कहता है, काश, हम सब जान सकें, तो भविष्य बिल्कुल नहीं है . चूंकि हम सब नहीं जानते, कुछ ही जानते हैं . इसलिए जो हम नहीं जानते वह भविष्य बन जाता है . हमें कहना पड़ता है, शायद ऐसा हो; क्योंकि बहुत कुछ है जो अनजाना है . अगर सब जाना हुआ हो तो हम कह सकते हैं कि ऐसा ही होगा . फिर इसमें रत्ती भर फर्क नहीं होगा . आदमी के बीज में भी अगर सब छिपा है . आज जो मैं बोल रहा हूं, किसी न किसी रूप में मेरे बीज में यह संभावना होनी चाहिये थी अन्यथा मैं यह कैसे बोलता . अगर किसी दिन यह संभावना हो सकी और हम आदमी के बीज को देख सकें तो मेरे बीज को देखकर मैं क्या बोल सकूंगा जीवन में, उसकी घोषणा की जा सकती है . क्या हो सकूंगा, क्या नहीं हो सकूंगा, क्या बनूंगा, क्या नहीं बनूंगा, क्या घटित होगा—उस सबकी सूचना हो सकती है . कोई आश्चर्य नहीं है कि हम आज नहीं कल आदमी के बीज में झांकने में समर्थ हो जायं .

जन्म-कुण्डली या 'होरोस्कोप' उसका ही टटोलना है . हजारों बर्ष से हमारी कोशिश यही हैं कि जो बच्चा पैदा हो रहा है वह क्या हो सकेगा ? हमें कुछ तो अन्दाज मिल जाय तो शायद उसे हम सुविधा दे पायें . शायद हम उससे आशाएं बांध पायें . जो होने वाला है, उसके साथ हम राजी हो जायं .

मुल्ला नसरुद्दीन ने अपने जीवन के अन्त में कहा है कि मैं सदा दुखी था . फिर एक दिन मैं अचानक सुखी हो गया . गांव भर के लोग चकित हो गये कि जो आदमी सदा दुखी था और जो आदमी हर चीज का अन्धेरा पहलू देखता था, वह अचानक प्रसन्न कैसे हो गया ! जो हमेशा 'पैसिमिस्ट' था, जो

हमेशा देखता हो, कांटे कहां-कहां हैं . एक बार नसरुद्दीन के बगीचे में बहुत अच्छी फसल आ गयी . सेव बहुत लगे ऐसे कि वृक्ष लद गये . पड़ौस में एक आदमी ने—सोचा उसने कि अब तो नसरुद्दीन कोई शिकायत न कर सकेगा—कहा कि इस बार फसल ऐसी है कि सोना बरस जायेगा, क्या ख्याल है नसरुद्दीन ? नसरुद्दीन ने बड़ी उदासी से कहा, और सब तो ठीक है; लेकिन जानवरों को खिलाने के लिए सड़े सेव कहां से लाओगे, उदास स्वर में, जानवरों को खिलाने के लिए सड़े सेव कहां से लाओगे, सब अच्छे हैं, कोई सड़ा ही हुआ नहीं . एक मुसीबत है . वह आदमी एक दिन अचानक प्रसन्न हो गया तो गांव के लोगों को हैरानी हुई, तो गांव के लोगों ने पूछा कि क्या राज़ है ? नसरुद्दीन ने कहा, " 'आई हैव लर्न्ट टु कोआप्रेट विथ इनएवी-टेबल'-- वह जो अनिवार्य है, उसके साथ सहयोग करना सीख गया . बहुत दिन लड़कर देख लिया . अब मैंने यह तय कर लिया है कि जो होना है, होना है . अब मैं सहयोग करता हूं इनएवीटेबल के साथ—जो अनिवार्य है उसके साथ अब मैं सहयोग करता हूं . अब दुख का कोई कारण न रहा . अब मैं सुखी हूं ."

ज्योतिष बहुत बातों की खोज थी, उसमें जो अनिवार्य है उसके साथ सहयोग . वह जो होने ही वाला है, उसके साथ व्यर्थ का संघर्ष नहीं; जो नहीं होने वाला है, उसकी व्यर्थ की मांग नहीं, उसकी आकांक्षा नहीं . ज्योतिष मनुष्य को धार्मिक बनाने के लिए, तथाता में ले जाने के लिए, परम स्वीकार में ले जाने के लिए उपाय था . उसके बहु आयाम हैं . हम धीरे-धीरे एक-एक आयाम पर बात करेंगे . आज तो इतनी बात, कि जगत एक जीवन्त शरीर है, 'आर्गनिक यूनिटी' है . उसमें कुछ भी अलग-अलग नहीं है—सब संयुक्त है . दूर से दूर जो है वह भी निकट से निकट से जुड़ा है—अजुड़ा कुछ भी नहीं इसलिए कोई इस भ्रांति में न रहे कि वह 'आइसोलेटिड आइलेंड' है, कोई इस भ्रांति में न रहे कि कोई एक द्वीप है छोटा-सा अलग-थलग . नहीं, कोई अलग-थलग नहीं है . सब संयुक्त है और हम पूरे समय एक दूसरे को प्रभावित कर रहे हैं और एक दूसरे से प्रभावित हो रहे है . सड़क पर पड़ा हुआ पत्थर भी, जब आप उसके पास से गुजरते हैं, तो आपकी तरफ अपनी किरणें फेंक रहा है, फूल भी फेंक रहा है . और आप भी ऐसे नहीं गुजर रहे हैं, आप भी अपनी किरणें फेंक रहे हैं .

मैंने कहा कि चांद-तारों से हम प्रभावित होते हैं . ज्योतिष का दूसरा और गहरा ख्याल है कि चांद तारे भी हमसे प्रभावित हैं ; क्योंकि प्रभाव कभी भी इकतरफा नहीं होता . जब कभी बुद्ध जैसा आदमी जमीन पर पैदा होता है तो चांद यह न सोचे कि चांद पर उनकी—बुद्ध की—वजह से

कोई तूफान नहीं उठे, कि बुद्ध की वजह से कोई तूफान चांद पर शांत नहीं होते . अगर सूरज पर धब्बे आते हैं और सूरज पर अगर तूफान उठते हैं, तो जमीन पर बीमारियां फल जाती हैं . तो जब जमीन पर बुद्ध जैसे व्यक्ति पैदा होते हैं और शांति की धारा बहती है और ध्यान का गहन रूप पृथ्वी पर पैदा होता है, तो सूरज पर भी तूफान फैलने में कठिनाई होगी . सब संयुक्त है . एक छोटा-सा घास का तिनका भी सूरज को प्रभावित करता है . और सूरज भी घास के तिनके को प्रभावित करता है . न तो घास का तिनका इतना छोटा है कि सूरज कहे कि तेरी हम फिक्र नहीं करते और न सूरज इतना बड़ा है कि यह कह सके कि घास का तिनका मेरे लिए क्या कर सकता है . जीवन संयुक्त है, यहां छोटा-बड़ा कोई भी नहीं है, एक 'आर्गनिक यूनिटी' है—एकात्म है . इस एकात्म का बोध अगर आये ख्याल में तो ही ज्योतिष समझ में आ सकता है, अन्यथा ज्योतिष समझ में नहीं आ सकता .

नर्मदा का उपालम्भ ००

न जाने कितने मधुमास बीत गए, न जाने
कब तक कोकिल ने बसंत राग अलापा,
न जाने कब तक विन्ध्य अंजलि में
आम्र मंजरियों को लिए खड़ा रहा, किन्तु तुम न आए .
तुम्हारे स्वागत के लिए मुस्काती हुई
उषा ने प्राची के सोपान पर आतुरता से
कदम रखे, दिन भर पंथ निहारा और
अंत में निराशा के अन्धकार में डूब गई .
ग्रीष्म ने तुम्हारी प्रतीक्षा की, वर्षा ने तुम्हारी
याद में जब आंसू बहाए तो मेरे हृदय
में तूफान उठा और मैं हहराती हुई,
कूल-किनारों को तोड़ती तुम्हें खोजने निकली .
मार्ग में शरद-पूर्णिमा मिली, कार्तिक-पूर्णिमा ने स्नेह से
मुझे थपथपाया, राका का राकेश से मिलन हुआ
किन्तु तुम्हारी पदचाप-ध्वनि न सुनाई दी,
पवन ने धीरे से मुझसे कहा— सागर के वक्षस्थल पर
रजनीश की किरणें नृत्य कर रही हैं;
तब से मैं सागर की ओर बढ़ रही हूं, इस आशा में कि
सागर में विलीन होकर तुम्हारे चरणों का स्पर्श कर सकूं .

—उर्मिला, एम० ए०, जबलपुर

माथेरान साधना-शिविर

स्वर्ग की ओर उड़ान

—साधु आनन्द ब्रह्मदत्त

अनादि और अनंत

अभी कुछ दिन पहले की बात है . भाई श्री शिव—स्वामी अगेह भारती—ने माउन्ट आबू साधना शिविर–२ के अपने संस्मरण का अंत करने के लिए मेरे एक वैयक्तिक पत्र की कुछ पंक्तियां उद्धृत कर दी थीं . मैं उनकी मजबूरी समझता हूं, क्योंकि भगवान श्री सम्बन्धी कोई भी संस्मरण लिखना बड़ा ही दुष्कर कार्य होता चला जा रहा है . सबसे अधिक कठिनाई महसूस होती है शुरू करने में . और जैसे तैसे यदि शुरू कर भी दिया जाये तो फिर अंत करना महा मुश्किल हो जाता है . क्योंकि फिर स्मृति की कुण्डलिनी जो खुलती है तो वापस सिकुड़ने का नाम नहीं लेती ! और इस सब पर जो सबसे बड़ी बात हावी हो जाती है, वह है लेखक का अपना मोह—क्या-क्या न लिखे वह ! तब वह लिखता ही चला जाता है और फिर कब और कहाँ अंत किया जाये इसका ध्यान रखना कठिन हो जाता है . अंत होता ही नहीं . हो ही नहीं सकता . होना भी नहीं चाहिए, क्योंकि जो अनंत है, उसका क्या अंत और जो अनादि है, उसका क्या आरंभ ?

लिखने बैठा हूं . जहां जो पकड़ में आ जायेगा, लिखूंगा . कोई आदि और अंत का सिलसिला नहीं है . सब कुछ लिखूंगा, यह भी निश्चित नहीं है . सब लिखकर भी हो सकता है कि आपको लगे कि कुछ नहीं लिखा है . और अगर मैंने कुछ नहीं लिखा है तो मेरा कोई ससूर नहीं क्योंकि 'कुछ' को तो भगवान श्री भी लिख सकने में समर्थ नहीं हैं ! और अगर समर्थ भी होंगे तो भी लिखते या बताते तो नहीं हैं .

है न ?

माथेरान : बाजार से रग्बी होटल तक

नियम कहता है कि संस्मरण जब लिखो तो उस स्थान का वर्णन करना चाहिए . प्राकृतिक दृश्य से लेकर वहां के निवासियों तक . कुछ नहीं तो कम से कम कुछ विशेष स्थानों, या स्थानों सम्बन्धी घटनाओं का उल्लेख

करना चाहिए . स्वयं देखकर न हो सके तो कम से कम कोई गाइड-बुक या टूरिस्ट-मैप से ही कुछ उड़ाकर लिख देना चाहिए . मैं अपने समस्त पाठकों से क्षमा प्रार्थी हूं, क्योंकि मैं इस नियम का पालन नहीं कर सका . गाइड-बुक खरीदना याद नहीं रहा और यों भी दूसरों की नजर से देखना मुझे कभी प्रीतिकर लगा नहीं . स्वयं चला नहीं क्योंकि मन नहीं हुआ और एक दिन तो बहाना भी मिल गया अपने आलस्य को छुपाने का, जब भगवान श्री ने सभा में कहा कि घूमें-फिरें नहीं, शक्ति को बचायें, ध्यान में उसी शक्ति का उपयोग करना है .

खैर, इससे आप लोग यह न समझें कि अब मैं सातवें शरीर के निकट पहुँच गया होऊंगा ! नहीं, केतकर-होटल की जलेबी और रेल्वे-होटल का भोजन जो शक्ति देता रहा, उससे अधिक शक्ति का उपयोग मैंने ध्यान में नहीं किया ! थी ही नहीं, मिली ही नहीं तो उपयोग का फिर प्रश्न ही क्या . तो मैं कह रहा था कि माथेरान मैंने नहीं देखा . माथेरान के नाम से अगर आप मुझसे कुछ जानना चाहते हैं तो मैं कहूंगा कि माथेरान बड़ा छोटा है, बाजार से रग्बी होटल तक !

बाजार, माथेरान की मुख्य सड़क है . दोनों ओर होटलें, दुकानें हैं . चिक्की यहां का मुख्य खाद्य पदार्थ है . क्षमा करें, मेरा मतलब है यहां के सैलानियों के लिए . लाल मिट्टी यहाँ की विशेष उपलब्धि है . शायद ही कोई यहां से बिना लाल मिट्टी लिए अपने घर वापस गया हो ? थैलियों में भरकर या कपड़ों में लगाकर न भी गया हो तो भी कम से कम पैरों के नाखूनों में भरकर तो जरूर ही ले गया होगा... बाजार से ऊपर, रेल्वे स्टेशन के निकट से एक सड़क ऊपर गयी है . रग्बी होटल तक . रग्बी होटल-वेजेटेरियन बड़ा-सा अहाता . छिटके हुए बंगले . मकानों में भी लाल रंग का बहुतायत से प्रयोग . प्रभु यहीं ठहरे हैं और यही है माथेरान साधना-शिविर .

देख लिया माथेरान ?

परिचय, प्रवेश-फी और परन्तु

दो मित्र साथ हैं . पहली बार साधना-शिविर में भाग लेने आये हैं . ध्यान में ही पहली बार उतरने जा रहे हैं . बहुत ही उत्सुकता और व्यग्रता से बम्बई से चले हैं . उत्सुकता, व्यग्रता साधना या साधना-शिविर की नहीं है . इस बात की है कि शिविर की फीस भारी मालूम दे रही है . सिर्फ दो ही दिन की उन्हें छुट्टी मिली है और दो दिन के लिए पूरी फीस उन्हें भारी लग रही है . वे मेरी तरफ बड़ी आशा भरी नजरों से देखते हैं बार-बार,

और मैं उनसे भी अधिक आशा भरी नजरों से उनकी ओर देखता हूं . उनकी हालत मुझसे अच्छी है .

'तुम्हें तो सब पहचानते होंगे ?' एक मित्र पूछता है .

'मैं स्वयं अपने को नहीं पहचानता .'

'फिलासफी छोड़ यार .' मित्र खीजता है .

'ऐसे में और सहारा भी किसका लूं ?'

दोपहर तीन बजे से हम रग्बी होटल के अहाते में डटे हैं . परिचित चेहरे घूम रहे हैं इर्दगिर्द . शायद ईश्वर भाई पहचानते होंगे . मैं धीरे से उनके पीछे पहुंचता हूं . पास कौन देगा ? धीरे से पूछता हूं . चाहता हूं कि आवाज में थोड़ी गिड़गिड़ाहट, रिरियाहट पैदा हो, पर नहीं होती . शायद हुई भी हो पर ईश्वर भाई व्यस्त थे, बोले, रात को ले लेना या थोड़ी देर रुको, मां योग भगवती को आने दो .

बाजार घूमकर हम लोग फिर अहाते में पैर तोड़ रहे हैं . शीत हवा बह चली है . अंधेरा हो चुका है . अब मैं जरा आश्वस्त हूं कि अंधेरे में मांग सकने की ज्यादा दिक्कत नहीं होगी . यों भी माँ भगवती से एक बार परिचय हुआ है . वे मिलती हैं, लेकिन मैं उनके पीठ पीछे हूं . मैं कहता हूं . वे भी कहतीं हैं एक बार पीछे देखकर, आप चालीस दे दें और दो दिन वालों के दो दिन के बीस . मैं मजबूरी बताता हूं . श्रीमती बहुगुणा भी उपस्थित हैं . वे कहती हैं, ऐसा सब लोग करेंगे तो खर्च कैसे निकलेगा ? इसका उत्तर तो मेरे पास भी नहीं है . एक बार मन में आता है, लौट जाना ठीक होगा . तभी बड़े भाई आ जाते हैं, पूछते हैं, हो गया तुम्हारा ? मैं सिर हिलाता हूं और मां भगवती पलटकर, घूरकर मुझे देखती हैं .

'ब्रह्मदत्त, तू ?' उनके मुंह से निकलता है और मैं अंधेरे को बुरी तरह कोसता हूं .

'माफ करना, मैंने तेरे को पहचाना नहीं,' उनके चेहरे पर वास्तविक दुख की रेखायें उभर आती हैं, 'तेरी जो खुशी हो दे दे !' वे कहती हैं .

मेरी खुशी तो सारा जहान है . मैं मन में कहता हूं .

परन्तु इतने बड़े यज्ञ में वह क्या पूरा पड़ेगा ?

यज्ञारम्भ

शनिवार, ८ जनवरी १९७२ . रात्रि आठ बजे . रग्बी होटल का अहाता . जोरों का जाड़ा पड़ रहा है . सैकड़ों जिज्ञासु जमा हो चुके हैं . माइक जमाया जा रहा है . मां योग तरु की कीर्तन मंडली उसके पीछे तैनात हो रही है .

'आज तुम्हारे नसीब से खाना नहीं खाया .' एक मित्र कहता है .

'शिविर में आकर खाना-पीना क्या सोचना यार ! मैं तो अब आठ दिन अखबार भी नहीं देखूंगा, जबकि पूरी दुनिया की तरह शेख मुजीब की रिहाई का समाचार जानने को मैं भी कुछ कम उत्सुक नहीं हूं .'

'तेरी बात अलग है...' वह लापरवाही से कहता है और मैं खोपड़ी पीट लेता हूं . रजनीश के चेलों को सब सुपरमैन समझते हैं . ... प्रभु तेरी अनुकम्पा अपार है . मैं मन ही मन चिढ़कर कहता हूं .

एकाएक कीर्तन आरम्भ हो गया . थोड़ी ही देर में मंच के पीछे वाली सड़क पर भगवान भास्वान चलते दृष्टि-गोचर हुए .

क्षणों बाद तख्त आलोक और सौरभ से भर उठा .

मां योग तरु की सुरीली वाणी माइक पर सुनायी पड़ी .

ॐ सहनाववतु .

सह नौ भुनक्तु .

सहवीर्यं करवाव है .

तेजस्विनावधीतमस्तु .

मा विद्विषाव है .

ॐ शांतिः शांतिः शांतिः .

'सर्वसार उपनिषद् . बड़ा अद्भुत नाम है,' मंद स्मित से सुशोभित भगवान श्री बोले, 'सर्वसार अर्थात् सबका सार, निचोड़ . उपनिषद् का अर्थ होता है, रहस्य . और यह रहस्य का भी सार है'—

रहस्यलोक की यात्रा पर

गोविंद बोलो, हरि गोपाल बोलो
राधा रमण, हरि गोपाल बोलो

दूसरे दिन सुबह कीर्तन-ध्यान का प्रथम प्रयोग प्रारम्भ हुआ . रग्बी होटल के अहाते में साधक चारों ओर फैल गये . सूर्य की स्वर्णिम-आभा और गुलाबी जाड़े में कीर्तन की धुन पर साधकों ने अपनी-अपनी शैली में नृत्य करना शुरू किया . पन्द्रह मिनट तक कीर्तन होता रहा और फिर केवल वाद्य बजते रहे पन्द्रह मिनट . तीस मिनट के इस प्रयोग ने साधकों के पैरों में वह 'कल' लगा दी कि सभी साधक उड़ चले—दूर, दूर, अनंत की ओर, रहस्य की ओर .

रहस्यलोक की यात्रा का सूत्रपात हुआ .

यात्रा का दूसरा चरण आरम्भ हुआ दोपहर चार बजे से . वृक्षों के समूह तले सभी यात्री जैसे एक विशालकाय नौका में बैठे थे . नौका के कप्तान एक विशाल वृक्ष के नीचे श्वेत परिधान में विद्यमान थे .

यात्रियो ! लगा कि जैसे उन्होंने पुकारा .

'आँखें बंद रहेंगी . कोई कुछ बोलेगा नहीं . कोई हल चल, कोई अभिव्यक्ति भी नहीं . दोनों आंखों के मध्य, आज्ञा-चक्र से, थर्ड-आई से मेरी ओर देखेंगे . साथ ही यह कल्पना भी करेंगे कि मैं आपसे एक रजत-रज्जु,एक सिल्वर कॉर्ड से संयुक्त हूं .'

कारवाँ चल पड़ा .

लगा कि उनके भीतर से एक प्रखर श्वेत किरण निकली और माथे को फोड़ गयी . चांदी की वह आलोक रश्मि सहस्त्रों भागों में विभक्त हो गई और सभी साधकों के आज्ञा-चक्र से जैसे चिपक गई . लगा कि कठपुतली का खेल हो रहा है . नियंता के हाथों की डोर.. मैं हंस पड़ा . एकाएक मुझे लगा कि वह श्वेत-किरण प्रभु के चरण के अंगूठे से निकल रही है . उन्होंने अंगूठा ऊपर नीचे किया . मेरा सिर आगे-पीछे हो गया . उन्होंने पैर हिलाया और मेरा सिर लट्टू की तरह नाचने लगा .

रहस्यलोक की यात्रा अबाध रूप से चल पड़ी .

यात्रा का तीसरा चरण आरम्भ हुआ रात्रि को . प्रवचन के पश्चात् त्राटक-ध्यान का प्रयोग हुआ . तीस मिनट तक अपलक प्रभु की ओर देखना और मुंह से हू–हू की हुंकार करते रहना . त्राटक-ध्यान कराते वक्त अब प्रभु खड़े ही रहते हैं . उछलते, कूदते, नाचते, कैसी भी स्थिति में उनकी ओर देखने में अब कठिनाई नहीं होती .

महामंत्र हुंकार ने यात्रियों को यात्रा के चरम शिखर पर पहुंचा दिया .

सोहम् .

श्वास-यान की वापसी

मैं बड़ा हैरान था कि श्वास-प्रयोग का क्या हुआ ? गुरुदेव अचानक उसे क्यों छोड़ बैठे ? श्वास को वे आत्मा और परमात्मा, इस लोक से उस लोक के बीच का सेतु कहते हैं . यह एकाएक क्या बात हुई कि मालिक ने उस जगत को पहुंचाने वाले जहाज का परित्याग कर दिया ? पर नहीं, यह मालिक कोई व्यक्ति तो है नहीं और न ही उसके कारखाने में एक ही किस्म का जहाज बनता है . ब्रह्मा को जहाज ने नहीं, ब्रह्मा ने जहाज बनाए हैं . फिर करुणा का सागर तो सभी के लिए लहराता है, एक नौका की क्या बात है !

लेकिन दूसरे दिन श्वास-यान लौट आया . दोपहर के मौन प्रयोग की बलि लेकर . अब सुबह आरम्भ हुआ, दस मिनट तेज श्वास, दस मिनट नृत्य और बाद के दस मिनट वही महामंत्र हू . मैं कौन हूं का मैं कौन मिट

चुका है . अब सिर्फ हू शेष है . यह बीज-मंत्र है भी गजब का . मात्र एक हुंकार से चेतना छटपटाने लगती है . और उसके बाद तो गजब ही हो जाता है जब शांति के क्षणों में प्रभु आंखें खुलवा देते हैं और आकाश की ओर देखने को कहते हैं . फिर कहते हैं—चेतना यात्रा पर निकल गई, दूर, दूर, अनंत की ओर . तब ऐसा ही लगता है जैसे हृदय को फोड़कर कोई हंस उड़ गया आकाश की तरफ . और तब न जाने क्यों इतनी राहत, इतनी मुक्ति इतना आनंद अनुभव होता है कि लगता है रोऊं, रोऊं और रोता चला जाऊं .

हरि आम छेटां-छेटां न रहिए

गीतकार पद्मश्री अविनाश व्यास और उनकी धर्मपत्नी सुलोचना जी शिविर में आरम्भ से उपस्थित थे . कला के देवता नटराज का सान्निध्य हो और कलाकार की कला अंगड़ाई न ले, असंभव है . गीतकार की लेखनी मचली और एक रात त्राटक- ध्यान के पश्चात् लेखनी कंठ के माध्यम से मुखर हो उठी .

योगविज्ञान तज्ञाय परमानंद मूर्तये
प्रफुल्लांबुज नेत्राय रजनीशाय ते नमः
अज्ञानतिमिरांधस्य ज्ञानांजन शलाकया
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्री गुरुवे नमः

सुरीले कंठ से सुश्री सुलोचना जी गा उठीं— हे भगवान रजनीश, हे पूजनीय रजनीश . शीत बढ़ गयी थी . रात गहरा उठी थी . परन्तु प्रेमीजनों ने मैदान नहीं छोड़ा . भगवान श्री भी मंद-मंद मुस्कराते बैठे रहे . एक बार तो वे खिलखिला भी उठे जब एक गुजराती गीत की पहली कड़ी फूटी—हरि आम छेटां-छेटां न रहिए अर्थात् हरि इस तरह दूर-दूर न रहिए . अविनाश जी ने भी अंत में एक गीत सुनाया जिसे श्रोताओं ने आह्लादित होकर सुना .

नव-संन्यास अंतर्राष्ट्रीय और एक चुनौती

एक दिन कीर्तन-ध्यान के पश्चात् मां वीतसंदेह, मां आनन्द प्रतिभा और स्वामी योग चिन्मय के तत्वावधान में नव-संन्यास अंतर-राष्ट्रीय की आम बैठक हुई . मां वीतसंदेह ने भगवान श्री द्वारा सुझाए गए चार प्रस्तावों से सभा को अवगत कराया . निश्चय किया गया कि कोई भी संन्यासी पांच वर्ष के लिए राजनीति में भाग नहीं लेगा . पुंगलिया जी के एक प्रश्न के उत्तर में मां आनन्द मधु ने बताया कि मताधिकार का प्रयोग करने की छूट है . वोट देने की मनाही नहीं है .

कीर्तन-मंडलियां पूरे देश का दौरा करेंगी . ध्यान सिखाने और रजनीश-साहित्य के प्रचार-प्रसार के कार्यक्रम को अधिक जोरदार बनाने की बात कही गयी .

सबसे अधिक जो रोमांचक प्रस्ताव प्रस्तुत किया गया, वह वस्तुतः प्रस्ताव कम, निमंत्रण, बल्कि यों कहें चुनौती अधिक था . भगवान श्री चाहते हैं कि मंडलियां तो निकलें किन्तु एकाकी यात्री भी निकले . वह भी पदयात्री . असुरक्षा में जीने का संकल्प लेकर उसे देश के दौरे पर निकल जाना है . असुरक्षा इतनी कि आवश्यकता पड़ने पर वह भिक्षा माँगने के लिए भी तत्पर रहे . कहीं से कोई संबल नहीं पकड़ना है .

शिविर-काल तक चुनौती का उत्तर नहीं मिला .

प्रतीक्षा जारी है .

गुरुः साक्षात् परब्रह्मः एक नई दीक्षा का सूत्रपात

१४ तारीख की सुबह . भगवान श्री अभी-अभी आकर बैठे हैं . स्वामी योग चिन्मय हर्षाते हुए माइक के निकट पहुंचते हैं .

'एक अत्यंत महत्वपूर्ण सूचना है,' वे हंसते हुए कहते हैं, 'आज से एक नई दीक्षा का सूत्रपात होता है . भगवान श्री ने नव-संन्यास के अंतर्गत एक नये संन्यास को जन्म दिया है . ऐसा देखा गया है कि कुछ लोगों को कपड़ों के कारण कठिनाई होती है अब से किन्हीं भी वस्त्रों में दीक्षा ली जा सकती है . अंतर केवल इतना होगा कि उन्हें साधक, साधिका संबोधित किया जायेगा—'

अभी उनकी बात समाप्त भी नहीं हुई थी कि हाथ में माला लिये हुए, जीवन-जागृति-केन्द्र के एक पुराने प्रेमी श्री लहरचंद शाह, सलज्ज भाव से परमब्रह्म के समक्ष आ खड़े हुए . तालियां बजने लगीं . भगवान श्री ने खिलखिलाकर माला पहना दी .

'अब से संन्यास की तीन श्रेणियां हो गयीं .' स्वामी योग चिन्मय बोले, 'साधक-साधिका की, दूसरी साधु-साध्वी की और पहली स्वामी और मा की...'

मंच पर भीड़ लग गयी .

मालाएं चुक गयीं .

आनन्द की वर्षा होने लगी .

किस्सा अपना नाम हसन का

इतवार . १६ तारीख . शिविर का आज अंतिम दिन है . आज सुबह से ही सबका हृदय भारी-भारी हो रहा है . लगता है आज कुछ खो जायेगा,

कुछ बिछुड़ जायेगा . एकाएक माथेरान अपना हो गया है . कल यहाँ से चले जाएंगे यह विचार आते ही लगता है कि बीमार हो गए हैं . तबियत एकदम बुखार के मरीज जैसी हो रही है . मृत्यु की आशंका से पीड़ित, स्वर्गच्युत होने का भाव, नर्क की ओर पुनः प्रयाण...न जाने क्या क्या सोचता चला जा रहा हूं .

रात्रि बैठक में सर्वसार उपनिषद् का अंतिम श्लोक गाया मां योग तरु ने . भगवान ने अंतिम को प्रथम से जोड़ते हुए एक वृत्त का निर्माण किया और फिर सूफी फकीर, का किस्सा सुनाने लगे —

हसन गुरू की खोज में गांव से निकला था . भगवान श्री ने कहा कि अपने ही गांव के लोगों को लोग कभी नहीं पहचानते ! हसन ने सोचा कि इस गांव में तो कोई है नहीं ऐसा . इस गांव में कोई हो ही नहीं सकता, ऐसा सोचकर वह बाहर निकला है लेकिन बाहर आकर वह सोच में पड़ गया कि कैसे ढूंढ़े ? कहाँ ढूंढ़े ? कोई पहचान, कोई लक्षण तो पता हो . उसे गांव के एक बुजुर्ग की याद आती है . वह बुजुर्ग से गुरू की पहचान पूछने उनके निकट पहुंचता है . बुजुर्ग एक वृक्ष के नीचे बैठे हैं . हसन प्रश्न करता है . बुजुर्ग बताते हैं कि वह एक ऐसे आदमी को खोजे जो अमुक-अमुक वृक्ष के नीचे, अमुक-अमुक पत्थर पर बैठा है . जिसकी आखें, चेहरा, नाक-नक्श ऐसा-ऐसा है . सारे लक्षण जानकर हसन उन्हें धन्यवाद दे, गुरू की खोज में निकल जाता है .

कहते हैं, तीस साल तक हसन ने खोज की किन्तु बुजुर्ग के बताये अनुसार ऐसा कोई व्यक्ति नहीं मिला . हताश वह पुनः अपने गांव की ओर लौटा है कि चलकर पूछूं उन्हीं बुजुर्ग से कि ऐसा कोई व्यक्ति है भी ? उधर वे बुजुर्ग भी उसकी प्रतीक्षा में बैठे हैं कि नासमझ कभी तो लौटेगा . हसन आता है . देखता है . देखता है कि बुजुर्ग उसी वृक्ष के नीचे बैठे हैं जैसा उन्होंने बताया था . वही पत्थर है जिसपर वे बैठे हैं . वही चेहरा, वही आंखें, वही नाक-नक्श . हसन चीख पड़ता है—यह क्या है ? जब आप ही वह व्यक्ति थे तो सीधे-सीधे क्यों नहीं बता दिया ? तीस साल व्यर्थ गए...

भगवान श्री बोलते जा रहे थे .

श्रोताओं में से एक महाकरुण, हृदय-विदारक क्रंदन उठा .

अनेक लोग विलाप करने लगे .

बिदाई

रोने की उत्कट इच्छा होती है, पर रोना बाहर नहीं निकलता है . स्वर्ग की ओर उड़ते हुए पंछी के जैसे किसी ने पर कतर डाले हैं . उन्मुक्त

आकाश ओझल होता चला जा रहा है . अब तो सिर्फ धरती ही धरती दिखायी दे रही है . झाड़-झंखाड़ों से भरी, नदी-नालों से उबलती, उबड़-खाबड़, सर्द-तप्त धरती .

रात भर सो नहीं सका हूं . एक अहसास है कि जैसे भीतर कुछ टूट गया है . लगता है कि सब कुछ लुट गया है . क्या टूट गया, क्या लुट गया पता नहीं . कुछ है जो लगातार उदास किए चला जा रहा है . कुछ-कुछ ऐसा कि जैसे बारात बिदा हो गयी है, जैसे शामियाना उखड़ गया है, जैसे खड़े खेत में आग लग गयी है, जैसे अभी-अभी यज्ञ-मंडप कोई राक्षस तहस-नहस कर गया है . शिविर में आने के लिए फिर अपने आपको कोसता हूं .

स्टेशन जाने वाली सड़क पर चुपचाप अंधेरे में खड़ा हूं . प्रभु इसी पथ से आयेंगे . बड़ी लालसा से बाट देख रहा हूं .

माथेरान की पृष्ठ भूमि में एक बार और उन्हें देख लूं .
शायद कुछ राहत मिले .
मैं सोचता खड़ा हूं .

१२। ३४६ बेलासिस ब्रिज,
तारदेव, बम्बई ३४

प्रभु मुझको राह दिखावो

—स्वामी अगेह भारती, जबलपुर

प्रभु मुझको राह दिखावो !...प्रभु !
मैं आंधी में घिरा हुआ सा,
पंथ कहीं खो गया हुआ सा,
चलना तो है दूर बहुत, पर—
मैं पहले ही थका हुआ सा,
प्रभु मुझको पार लगावो !प्रभु... !

मैं इस क्षण अब किसे पुकारूं ?
अंधियारे में किधर निहारूं ?
आंखें भय-वश बन्द हो गईं
हाथ भला मैं किधर पसारूं ?
प्रभु, अब तो आन बचावो !
प्रभु मुझको राह दिखावो !!

कृष्ण-चेतना

(एक प्रश्नोत्तर वार्ता से)

संकलन : मा योग मीरा, जूनागढ़

प्रश्न : ऐसी कौनसी सामाजिक, राजनीतिक और धार्मिक स्थितियां थी जिनके कारण कृष्ण जैसी आत्मा के अवतरण होने का आधार बना ? कृपया इस पर प्रकाश डालें .

आचार्य श्री : कृष्ण जैसी चेतना के जन्म के लिये सभी समय, सभी काल सभी परिस्थितियां काम की हो सकती हैं . कोई काल, कोई परिस्थिति कृष्ण जैसी चेतना के पैदा होने का कारण नहीं होती . यह दूसरी बात है कि किसी विशेष परिस्थिति में वैसी चेतना को विशेष व्यवहार करना पड़े; लेकिन ऐसी चेतनाएँ काल निर्भर नहीं होतीं . सिर्फ सोये हुए लोगों के अतिरिक्त काल पर कोई भी निर्भर नहीं होता . जागा हुआ कोई भी व्यक्ति अपने समय से पैदा नहीं होता; बल्कि बात बिलकुल उल्टी है, जागा हुआ व्यक्ति अपने समय को अपने अनुकूल ढाल लेता है . सोये हुए व्यक्ति समय के अनुकूल पैदा होते हैं; लेकिन हम सदा ऐसा सोचते रहे हैं कि कृष्ण शायद इसलिये पैदा होते हैं कि युग बहुत बुरा है—इसलिये पैदा होते हैं कि बहुत दुर्गंध है . इस समझ में बुनियादी भूल है . इसका मतलब यह हुआ कि कृष्ण जैसे व्यक्ति 'काज़ल चेन' में पैदा होते हैं, 'कार्य कारण' की शृंखला में पैदा होते हैं . इसका मतलब हुआ कि हमने कृष्ण के जन्म को भी 'यूटीलिटेरियन' कर लिया—हमने उपयोगिता में ढाल लिया . इसका यह भी मतलब हुआ कि कृष्ण जैसे व्यक्ति को भी हम अपनी सेवा के अर्थों में ही देख सकते हैं और किसी अर्थों में नहीं देख सकते . अगर रास्ते के किनारे फूल खिले, तो राह से गुजरने वाला सोच सकता है कि मेरे लिये खिल रहा है, मेरे लिये सुगंध दे रहा है . हो सकता है, अपनी डायरी में यह लिखे कि मैं जिस रास्ते से गुजरता हूं, मेरे कारण, मेरे लिये फूल खिल जाता है . लेकिन फूल निर्जन रास्तों पर भी खिलते हैं . फूल किसी के लिये नहीं खिलते, फूल अपने लिये खिलते हैं . किसी दूसरे को सुगंध मिल जाती है यह बात दूसरी है .

कृष्ण जैसे व्यक्ति किसी के लिये पैदा नहीं होते है; अपने आनंद से ही जन्मते हैं . दूसरे को सुगंध मिल जाती है यह बात दूसरी है . और ऐसा

कौनसा युग है, जिसमें कृष्ण जैसा व्यक्ति पैदा हो तो हम उससे कोई उपयोग न ले सकेंगे ? सभी युगों में ले लेते हैं . सभी युगों में जरूरत है . सभी युग पीड़ित हैं, सभी युग दुःखी हैं . तो कृष्ण जैसा व्यक्ति तो किसी भी क्षण में उपयोगी हो जायगा . सुगंध की चाह किस को नहीं हैं ? किस के नासापुट सुगंध के लिये आतुर नहीं हैं ? फूल किसी भी रास्ते पर खिले और कोई भी गुजरे तो सुगंध ले लेता है . मैं आपसे यह कहना चाहता हूं कि कृष्ण जैसे व्यक्तियों को—'यूटीलिटेरियन'—उपयोगिता की भाषा में सोचना ही गलत है . लेकिन, हमारी मजबूरी है कि हम हर चीज को उपयोगिता के संदर्भ में ही सोचते हैं, किस उपयोग में आयेगी . निरुपयोगी वस्तु का हमारे लिये कोई मूल्य नहीं है, 'परपजलेस' का हमारे लिए कोई अर्थ ही नहीं है . आकाश में बादल चलते हैं, तो सोचते हैं, यह शायद हमारे खेतों में वर्षा करने के लिये चलते हैं . अगर आपके हाथों पर बंधी घड़ियां सोच सकें, तो वे शायद यही सोचेंगी कि हम बंध सकें इसलिये यह आदमी पैदा होता है . निश्चित ही, चश्मा अगर सोच सके, तो यों सोचेगा कि हम लग सकें इसलिये यह आंखें पैदा हुई हैं . लेकिन वे सोच नहीं सकते इसलिए मजबूरी है . आदमी सोच सकता है तो वह हर चीज को 'ईगोसेन्ट्रिक' कर लेता है—वह अपने अहंकर के केन्द्र पर कर लेता है . वह कहता है, सब हमारे लिये है—कृष्ण जन्मते हैं तो मेरे लिये, बुद्ध जन्मते हैं तो मेरे लिये, फूल खिलते हैं तो मेरे लिये, चांद-तारे चलते हैं तो मेरे लिये . आदमी के लिए सब चल रहा है . आकाश में चांद-तारे चलते हैं वे भी हमारे लिये, सूरज निकलता है वह भी हमारे लिये . यह दूसरी बात है कि सूरज के निकलने से हम रोशनी ले लेते हैं; लेकिन हमें रोशनी देने को सूरज नहीं निकलता है .

जिन्दगी की धारा उपयोगिता की धारा नहीं है . उपयोगिता की भाषा में ही सोचना गलत है . जिन्दगी में सब हो रहा है, किसी के लिए नहीं, होने के लिए ही . फूल खिल रहे हैं अपने आनन्द में; नदियां बह रही हैं अपने आनन्द में; बादल चल रहे हैं अपने आनन्द में; चाँद-तारे चल रहे हैं अपने आनन्द में . आप किसके लिये पैदा हुए हैं ? आप किस कारण पैदा हुए हैं ? आप अपने आनन्द में जीते हैं .

तो कृष्ण जैसा व्यक्ति तो पूरी तरह अपने आनन्द में जी रहा है . ऐसा व्यक्ति कभी भी पैदा हो जाय तो हम जरूर उसका कुछ उपयोग करेंगे . सूरज कभी भी निकले तो हम उसकी रोशनी अपने घरों में ले जायेंगे और बादल कभी भी बरसे तो हम फसल पैदा करेंगे और फूल कभी भी खिलें, हम उनकी मालायें बनायेंगे; लेकिन हम सबके लिए यह नहीं हो रहा है . परंतु

निरंतर हम इसी भाषा में सोचते हैं, महावीर क्यों पैदा हुए ? कौन-सी राजनीति कैसी स्थिति थी जिससे महावीर पैदा हुए ? बुद्ध क्यों पैदा हुए ? कौन-सी सामाजिक स्थिति थी जिससे बुद्ध पैदा हुए ? ध्यान रहे, इसमें एक और खतरनाक बात है और वो यह है कि व्यक्ति की चेतना सामाजिक परिस्थितियों से पैदा होती है, ऐसा मार्क्स का सोचना था . मार्क्स कहता था कि चेतना परिस्थितियां नहीं बनाती, परिस्थतियों से चेतना जन्मती है . लेकिन जो नहीं हैं कम्युनिस्ट, वह भी इसी तरह सोचते हैं . उन्हें पता नहीं होगा कि जिन लोगों ने भी कभी यह कहा है कि इस कारण से महावीर पैदा हुए हैं, इस कारण से कृष्ण पैदा हुए, वो यह कह रहे हैं कि समाज की परिस्थितियां उनके जन्मों का कारण हैं . नहीं, समाज की परिस्थितियां उनके जन्मों का कारण नहीं हैं और समाज की ऐसी कोई भी परिस्थिति नहीं है, जो कृष्ण जैसी चेतना का जन्म दे दे . समाज तो बहुत पीछे होता है कृष्ण जब पैदा होते हैं . कृष्ण जैसी चेतना को जन्म देने की क्षमता उसकी नहीं है; बल्कि कृष्ण ही पैदा होके उस समाज को नई दिशायें अनजाने में दे जाते हैं, नये मार्ग दे जाते हैं— नई शक्ल, नई रूपरेखा दे जाते हैं .

मैं परिस्थितियों को बहुत मूल्य नहीं देता रहा, मैं मूल्य चेतना को 'कान्शसनेस' को ज्यादा देता हूं . और आपसे यह कहना चाहूंगा कि जीवन उपयोगितावादी नहीं है, जीवन खेल जैसा है, लीला जैसा है .

एक आदमी जा रहा है रास्ते पर. उसे कहीं पहुंचना है, उसकी कोई मंजिल, कोई मुकाम है . उसे किसी काम के लिये जाना है . एक आदमी सुबह घूमने निकला है—उसे कहीं पहुंचना नहीं है, कहीं जाना नहीं है, कोई लक्ष्य नहीं है, सिर्फ घूमने निकला है . यह आदमी भी चलता है रास्ते पर, लेकिन कभी आपने ख्याल किया है कि वही रास्ता जब आप काम करने के लिये निकलते हैं तो बोझिल हो जाता है और वही रास्ता जब आप घूमने के लिये निकलते हैं तो आनंदपूर्ण हो जाता है . वही पैर जब काम करने को जाते हैं तो भारी हो जाते हैं, वे ही पैर जब सिर्फ घूमने को जाते हैं तो हल्के हो जाते हैं . वही आदमी जब काम करने जाता है तो उसके सिर पर मनो बोझ होता है . और उसी रास्ते पर, उन्हीं कदमों से, उतनी ही दूरी पूरी करता है सिर्फ घूमने के लिए, तब कोई हिसाब नहीं उसके आनन्द का, कोई बोझ नहीं होता है .

कृष्ण जैसे व्यक्ति किसी काम के लिए नहीं जीते हैं . उनकी जिन्दगी घूमने जैसी है, कहीं जाने जैसी नहीं . उनकी जिन्दगी एक खेल है . निश्चित ही, जिस रास्ते से वे गुजरते हैं, उस रास्ते पर अगर कांटे पड़े हों, तो उन्हें हटा लेते हैं—यह बिलकुल दूसरी बात है . यह भी उनके आनन्द का हिस्सा

है; लेकिन कृष्ण उस रास्ते से कांटों को हटाने के लिए नहीं निकले थे . निकले थे और कांटे पड़े थे, तो हटा लिये थे . और उस रास्ते पर अगर कोई आदमी रास्ता भूल गया था और उसने पूछा है कि रास्ता कहां है और उन्होंने बता दिया तो वो आदमी यह नहीं सोचे कि वो कोई 'ट्रेफिक' के, पुलिस के आदमी हैं, जो उसके लिए खड़े थे वहां रास्ता बताने को . वो वहां से निकले थे, आपने पूछा है, उन्होंने बता दिया है—यह सब 'नान-काज़ल' है, इसकी 'कार्य-कारण' की कोई शृंखला नहीं है . इसलिए नहीं कि कृष्ण या बुद्ध या क्राईस्ट या महावीर आदि हमारी शृंखला में सोचने के लिए तैयार नहीं होते हैं . वे घटित होते हैं अकारण या कहें कि उनके कारण उनके आंतरिक हैं; हमारे सामाजिक और वाह्य कारण नहीं हैं . व्यक्ति की आत्मा और व्यक्ति की चेतना का अर्थ यही है कि व्यक्ति की चेतना भीतर परम स्वतन्त्र है . उसे कोई बांधता नहीं है . उसे कोई बांध नहीं सकता .

एक बहुत बड़े ज्योतिषी के सम्बन्ध में मैंने सुना है कि उसके गांव के लोग उस ज्योतिषी से बहुत परेशान हो गये थे . वो जो भी कहता था, वह ठीक उतर जाता था . तब उस गांव के दो युवकों ने सोचा कि कभी तो एक बार इस ज्योतिषी को गलत करना जरूरी है . सर्दी के दिन थे, वे अपने बड़े ओवर कोट के भीतर एक कबूतर को छिपाकर उस ज्योतिषी के पास पहुंचे और उस ज्योतिषी से उन्होंने कहा कि इस कोट के भीतर हमने एक कबूतर छिपा रखा है . हम आपसे पूछने आये हैं कि वो जिन्दा है या मरा हुआ है ? वे यह तय करके आये थे कि अगर वो कहे जिन्दा है, तो भीतर उसकी गरदन मरोड़ देनी है, मरा हुआ कबूतर बाहर निकालना है . अगर वो कहे कि मरा है, तो कबूतर को जिन्दा ही बाहर निकालना है . एक दफा तो मौका होना ही चाहिए कि वो ज्योतिषी गलत हो जाय . उस बूढ़े ज्योतिषी ने नीचे से ऊपर तक देखा और उसने जो वक्तव्य दिया, वह बहुत अद्‌भुत था! उसने कहा—" 'इट इज इन युवर हेन्ड्स' (तालियां)—न कबूतर जिन्दा है, न मरा है—तुम्हारे हाथ में है . जैसी तुम्हारी मर्जी ." उन युवकों ने कहा—"बड़ा धोखा दे दिया है आपने !"

जिन्दगी हमारे हाथों में है . और कृष्ण जैसे लोगों के तो बिलकुल हाथों में है . वे जैसे जीना चाहते हैं वैसा ही जीते हैं—न कोई समाज, न कोई परिस्थिति, न कोई बाहरी दबाव उसमें कोई फर्क ला पाता है . उनका होना ही उनका अपना होना है . निश्चित ही, कुछ फर्क हमें दिखाई पड़ते हैं, दिखाई पड़ेंगे; क्योंकि वे हमारे बीच जीते हैं . वैसी घटनायें घटती हैं, जो

हमारे बीच घटती हैं, जो कि नहीं घटी होतीं अगर किसी और समय में वो होते हैं . लेकिन वो गौण है, 'इर्रेलेवेन्ट' है, असंगत है, उससे कृष्ण के आंतरिक जीवन का कोई लेना-देना नहीं है . मेरी समझ ऐसी है कि कृष्ण किसी समाज के लिये पैदा नहीं होते हैं, न किसी राजनीतिक स्थिति के लिए पैदा होते हैं, न किसी के बचाने के लिए पैदा होते हैं . हां, बहुत लोग बच जाते हैं—यह बिलकुल दूसरी बात है . बहुत लोगों को रास्ता मिल जाता है—यह बिलकुल दूसरी बात है . कृष्ण तो अपने आनन्द में खिलते हैं और यह खिलना वैसे ही अकारण है; जैसा, आकाश में बादलों का चलना, जमीन पर फूलों का खिलना, हवाओं का बहना—यह उतना ही अकारण है . लेकिन हम उतने अकारण नहीं है, इसलिए कठिनाई होती है समझने में . हम तो कारण से जीते हैं . हम तो किसी को प्रेम भी करते हैं तो भी कारण से करते हैं . प्रेम भी हम कारण से करते हैं, प्रेम का फूल भी अकारण नहीं खिल पाता है . हम बिना कारण के तो कुछ कर ही नहीं सकते और ध्यान रहे, जब तक आपकी जिन्दगी में बिना कारण के किसी करने का जन्म न हो तब तक आपकी जिन्दगी में धर्म का भी जन्म नहीं होगा . जिस दिन आपकी जिन्दगी में कुछ अकारण भी होने लगे कि आप बिना कारण करते हैं—'अन्कन्डीशनल'—कोई वजह नहीं थी करने की, करने का आनंद ही एक मात्र वजह थी .

प्रश्न : आपने कहा कि कृष्ण का जन्म अकारण है; लेकिन गीता में कृष्ण ही कहते हैं कि जब-जब धर्म की हानि होती है, तब-तब मुझे आना पड़ता है . कृपया इसे स्पष्ट करें .

उत्तर : हां, कृष्ण कहते हैं कि जब-जब धर्म की हानि होती है, तब-तब मुझे आना पड़ता है . इसका क्या मतलब होगा फिर ? ये वही व्यक्ति कह सकता है जो परम स्वतन्त्र हो . आप तो नहीं कह सकते कि जब-जब ऐसा होगा मैं आऊंगा . आप यह भी नहीं कह सकते कि अगर ऐसा नहीं हुआ, तो मैं नहीं आऊंगा . हमारा आना बंधा हुआ आना है . लम्बे कर्मों का बन्धन है हमारा, 'कॉज़ल चेन है .' हम ऐसा वायदा नहीं कर सकते, हम ऐसी 'प्रोमिस' नहीं दे सकते . हम हिम्मत भी नहीं कर सकते ऐसे वायदा करने की . कृष्ण ये भी हिम्मत कर रहे हैं, इस हिम्मत का भी कारण वही है कि वे किसी कारण से नहीं जीते हैं बंधकर, उनकी मौज है . इस मौज से कुछ भी निकल सकता है . ये वायदा स्वतंत्र चेतना से ही संभव है . अगर कृष्ण कहते हैं, मैं आ जाऊंगा—ऐसी स्थिति अगर हुई, तो स्थिति के कारण कृष्ण नहीं आ जायेंगे, अपनी स्वतंत्रता के कारण आ जायेंगे, स्थिति के कारण नहीं . कृष्ण यह नहीं कहते हैं कि अगर ऐसी स्थिति हुई तो मजबूरी है, ऐसा नहीं

है . यह 'प्रोमिस' है, यह वचन है, आ जाऊंगा ऐसी स्थिति हुई, लेकिन ये वचन कौन दे सकता है ?

एक बहुत अद्‌भुत घटना महाभारत में है . एक सुबह युधिष्ठिर अपने घर के बाहर बैठे हैं और एक भिखारी भीख मांगने आ गया . युधिष्ठर ने उससे कहा कि तुम कल आ जाना, अभी थोड़ा काम में हूं, अच्छा हो कि कल आ जाओ . भिखारी चला गया . भीम यह सुनता था . उसने पास में पड़ा हुआ ढोल उठा लिया और बजाता हुआ गांव की तरफ भागा . युधिष्ठर ने कहा यह क्या कर रहे हो ? तो उसने कहा—"समय न चूक जाय मैं गांव में खबर कर दूं कि मेरे भाई ने कल के लिए वचन दिया है . मेरा भाई समय का मालिक हो गया ! मुझे पता नहीं था कि तुम समय के मालिक हो गये हो ! तुम कल बचोगे ? पक्का है ? कल ये भिखारी बचेगा ? पक्का है ? कल देने योग्य मन बचेगा यह पक्का है ? कल ये भिखारी मागने योग्य मन का रहेगा यह पक्का है ? कल तुम दोनों मिल सकोगे यह पक्का है ? तुमने समय को जीत लिया, मैं जाऊं गांव में खबर करदूं ; क्योंकि मुझे कुछ भरोसा नहीं कि अगर घड़ी दो घड़ी चूका तो मैं बचूंगा कि नहीं इसलिए मैं ढोल लेकर जाऊं ." तो युधिष्ठिर ने कहा—"ठहरो मुझसे भूल हो गयी . यह वचन तो केवल वे ही दे सकते हैं जो परम स्वतंत्र हैं . भिखारी को वापिस बुला लो, जो मुझे देना है आज ही दे दूं कल का कोई भरोसा नहीं है ." लेकिन कृष्ण कल का वायदा नहीं कर रहे हैं; बड़ा लंबा वायदा है ! वो वायदा यह है कि जब भी धर्म की हानि होगी तब मैं आ जाऊंगा . यह वायदा कोई कैदी नहीं कर सकता . एक कारागृह में हम किसी कैदी को डाल दें, वो वायदा नहीं कर सकता कि कल अगर जरूरत होगी तो मैं आ जाऊंगा . हाथ में जिसके जंजीरें हैं वो वायदा नहीं कर सकता . यह वायदा तो परम स्वतंत्र चेतना ही कर सकती है कि मैं आ जाऊंगा . कोई जंजीरें नहीं . लेकिन ध्यान रहे, यह परिस्थितियों के कारण आना नहीं है, स्वतंत्र चेतना के कारण यह वायदा है . इस फर्क को ठीक से समझ लेना जरूरी है . इस वायदे में भी कृष्ण की सिर्फ इतनी ही सूचना है कि समय से, परिस्थितियों से मेरा कोई बंधन नहीं है; मैं स्वतंत्र हूं . यह स्वतंत्रता की उद्‌घोषणा है . लेकिन कई बार घोषणाएं बड़ी उल्टी होती हैं, तब हम बड़ी कठिनाई में पड़ जाते हैं . हम सोचते हैं, कृष्ण को भी आना पड़ेगा . जैसे पानी को गरम करते हैं, तो सौ डिग्री पर उसे भाप बनना पड़ता है . अगर किसी दिन पानी मुझसे कहे कि मत घबड़ाओ, अगर गर्मी कम होगी तो मैं एक-दो डिग्री पर भी भाप बन जाऊंगा . तो उस दिन समझना कि पानी स्वतंत्र हो गया, अब कोई डिग्री का बंधन न रहा . ऐसे आश्वासन परिपूर्ण स्वतंत्रता के बोध से निकलते हैं . जहां

परतंत्रता बिलकुल गिर गयी है, वहां से ऐसे फूल खिल जाते हैं स्वतंत्रता के, आश्वासन के, अन्यथा नहीं खिल पाते . नहीं, कोई कृष्ण जैसा व्यक्ति आपके कारण नहीं आता है . हम सब बंधे हुए चलते हैं . ...

बीच में ही एक प्रश्न : एक 'कंडीशन' उन्होंने रखी है—परित्राणाय साधूनाम्, विनाशाय च दुष्कृताम् ...

आचार्य जी कहते हैं : हां, हां,...साधुओं की रक्षा के लिए और दुष्टों के अंत के लिए मैं आऊंगा...ठीक है . दोनों का एक ही मतलब है . दुष्टों के अंत के लिए का भी वही मतलब है . दुष्ट का अंत कब होता है ? यह थोड़ा समझने जैसा है . दुष्ट का अंत कब होता है, मार डालने से ? मार डालने से दुष्ट का अंत नहीं होता; क्योंकि कृष्ण भली-भांति जानते हैं कि मारने से कुछ मरता नहीं . दुष्ट का अंत तभी होता है, जब उसे साधु बनाया जा सके और कोई उपाय नहीं है . मारने से दुष्ट का अंत नहीं होता, इससे सिर्फ दुष्ट का शरीर बदल जायगा और कोई फर्क नहीं पड़ेगा . दुष्ट का अंत एक ही स्थिति में होता है, जब वो साधु हो जाय . और बड़े मजे की बात है कि दूसरी बात उन्होंने कही कि साधुओं की रक्षा के लिए ! साधुओं की रक्षा की जरूरत तभी पड़ती है जब वो दिखावटी साधु रह जाय, अन्यथा नहीं पड़ती . उसमें साधु की रक्षा की क्या जरूरत होगी ? साधु को भी रक्षा की जरूरत पड़ेगी, तो फिर...फिर तो बहुत मुश्किल हो जायेगी ! 'साधुओं की रक्षा के लिए आऊंगा'— इसका मतलब है, जिस दिन साधु झूठे साधु होंगे, असाधु होंगे उस दिन मैं आऊंगा . सिर्फ असाधुओं के लिए ही रक्षा की जरूरत पड़ सकती है जो दिखाई पड़ता हो साधु, अन्यथा साधुओं को क्या रक्षा की जरूरत होगी . और कृष्ण आयेंगे तो साधु कहेंगे कि आप नाहक मेहनत न करें, हम अपनी असुरक्षा में भी सुरक्षित हैं . साधु का मतलब ही यह होता है, 'सीक्योर इन इनसीक्योरिटी'—अपनी असुरक्षा में जो सुरक्षित है उसी का नाम साधु है . अपने खतरे में भी जो 'एट ईज़' है उसी का नाम साधु है . साधु का मतलब यही है कि जिसके लिए अब कोई असुरक्षा न रही, जिसके लिए कोई 'इन सीक्योरिटी' न रही . कृष्ण की क्या जरूरत होगी उसको बचाने की ? यह वचन बहुत मजेदार है . इसमें कृष्ण यह कहते हैं कि साधुओं को बचाने आना पड़ेगा . जिस दिन साधु, साधु नहीं होगा, असाधु ही साधु दिखाई पड़ेंगे, उस दिन बचाने आना पड़ेगा . और उसी दिन दुष्टों को भी बदलने की जरूरत पड़ेगी; नहीं तो यह काम तो साधु भी कर ले सकते हैं, इसके लिए कृष्ण की क्या जरूरत है ? कृष्ण की जरूरत उसी दिन पड़ सकती है . दुष्टों को मारने का काम तो कोई भी कर ले सकता है . हम सभी करते हैं .

अदालतें करती हैं, दंड करता है, कानून करता है, यह सब दुष्टों को मारने का काम है . दुष्टों को बदलने का, 'ट्रान्सफॉरमेशन' का काम नहीं करते कि दुष्ट साधु बनाया जा सके . लेकिन जिस दुनिया में साधु भी असाधु होगा, उस दुनिया में दुष्ट की क्या स्थिति होगी ! लेकिन इस वाक्य को भी बड़ा अजीब समझा गया . साधु समझते हैं कि हमारी रक्षा के लिए आयेंगे और जिसको अभी रक्षा की जरूरत है, वो साधु नहीं है . और दुष्ट समझते हैं कि वो हमें मारने के लिए आयेंगे . दुष्टों का समझना ठीक है; क्योंकि दुष्ट दूसरे को मारने को उत्सुक और आतुर रहते हैं . उनको एक ही ख्याल आ सकता है कि हमें मारने को आयेंगे . लेकिन कोई मारा तो जा नहीं सकता, वो वापिस लौटकर वही हो जायगा . वो नासमझी कृष्ण नहीं कर सकते— दुष्टों के विनाश के लिए . दुष्ट का विनाश होता है साधुता से . साधुओं की रक्षा के लिए, साधुओं की रक्षा की जरूरत पड़ती है जब साधु सिर्फ 'एपियरेंस', दिखावा रह जाय, भीतर उसकी कोई आत्मा साधुता की नहीं रह जाती . यह वचन बहुत अद्‌भुत है ! लेकिन साधु जन बैठकर अपने मठों में इस पर विचार करते रहते हैं कि बड़ी अपने पर कृपा है, जब दिक्कत आयेगी तो जरूर आयेंगे . और साधु अपने मन में इससे भी तृप्ति पाता है कि जो-जो हमें सता रहे हैं वो दुष्ट हैं . साधु की दुष्ट की यही परिभाषा होती है कि जो-जो साधुओं को सता रहा है, वो दुष्ट है . जबकि साधु की आंतरिक व्यवस्था यह है कि जो उसे सताये वो भी उसे मित्र मालूम होना चाहिए, दुष्ट नहीं मालूम होना चाहिए . अगर सताने वाला शत्रु मालूम पड़ने लगे, दुष्ट मालूम पड़ने लगे, तो यह जो सताया गया है साधु नहीं है . साधु का तो मतलब यह है कि जिसे अब शत्रु दिखाई नहीं पड़ता— उसे सताओ तो भी दिखाई नहीं पड़ता . तो साधु बैठकर सोचते रहते हैं, अर्थात् असाधु बैठकर सोचते रहते हैं कि हमारी रक्षा के लिए और यह जो दुष्ट उन्हें सता रहे हैं, इनके नाश के लिए वो आयेंगे, इसलिए गीता के इस वचन का बड़ा पाठ चलता है— इस वचन पर बड़े मन से, भाव से लोग लगे रहते हैं; लेकिन उन्हें पता नहीं कि यह वचन साधुओं के लिए बड़ा मजाक है, इस वचन में बड़ा व्यंग है . व्यंग गहरा है और ऊपर से एकदम दिखाई नहीं पड़ता है . कृष्ण जैसे लोग जब मजाक करते हैं तो गहरा ही करते हैं . कोई साधारण मजाक नहीं करेंगे, सदियां लग जाती हैं मजाक को समझने में . (आ हा हा)

कहावत है कि अगर कोई मजाक कही जाय तो सुनने वाले लोग तीन किस्मों में हंसते हैं . पहले तो वे लोग हंसते हैं जो उसी वक्त समझ जाते हैं . दूसरे लोग इन हंसते हुए लोगों को देखके हंसते हैं कि कुछ मामला हो गया .

तीसरे लोग तो कुछ भी नहीं समझते . वो सिर्फ यह सोचके कि कहीं हम नासमझ न समझे जायं—सब हंस रहे हैं—हमें हंस देना चाहिए . मजाक को समझने में भी वक्त लग जाता है और कृष्ण जैसे लोग जब मजाक करते हैं, तब तो बहुत वक्त लग जाता है . अब इस वचन में बड़ा व्यंग है, बड़ा मजाक है . गहरा मजाक है साधु के ऊपर . वह मजाक यह है कि एक वक्त आयेगा कि साधुओं को रक्षा की जरूरत पड़ेगी !

प्रश्न : श्रीकृष्ण की लीला अनुकरणीय है या चिंतनीय है ? अगर कोई इनकी लीला का अनुकरण करने जायेगा तो शायद पतन हो जाय उसका !

आचार्य श्री : हां, डरे हुए आदमियों को कृष्ण से जरा दूर रहना चाहिए, (जोर से हंसी और तालियां) ठीक सवाल पूछते हैं . अनुकरणीय कृष्ण तो क्या कोई भी नहीं है . और ऐसा नहीं है कि कृष्ण का अनुकरण करने जायेगा तो पतित होगा, किसी का भी अनुकरण करने जायेगा तो पतित होगा . अनुकरण ही पतन है . कृष्ण के संबंध में लेकिन हम विशेष रूप से पूछते हैं . महावीर के संबंध में नहीं पूछेंगे ऐसा, बुद्ध के संबंध में नहीं पूछेंगे, राम के संबंध में नहीं पूछेंगे ऐसा . कोई नहीं कह सकेगा राम का अनुकरण करने जायेंगे तो पतन हो जायेगा . अकेले कृष्ण पर ही सवाल क्यों उठता है? राम को तो वो अपने बच्चे को समझायेंगे कि अनुकरण करो . कृष्ण के मामले में कहेंगे कि जरा सावधानी से चलना . इसीलिए तो हमारा डरा हुआ मन है. लेकिन मैं आपसे कहता हूं, अनुकरण ही पतन है . किसी का भी अनुकरण पतन है . अनुकरण किया कि आप गए, आप खो गए . न तो कृष्ण अनुकरणीय हैं, न कोई और—वे सब चिंतनीय हैं, सब विचार करने योग्य हैं—बुद्ध भी, कृष्ण भी, क्राईस्ट भी, महावीर भी . और मजे की बात है कि बुद्ध पर विचार करने में इतनी कठिनाई न होगी . और न क्राईस्ट पर विचार करने में इतनी कठिनाई होगी . असली कठिनाई कृष्ण पर ही विचार करने में पैदा होती है; क्योंकि महावीर, बुद्ध और क्राईस्ट का जीवन विचार की पद्धतियों में समाया जा सकता है . उनके जीवन का ढंग मर्यादा है, उनके जीवन का ढंग सीमा है . कृष्ण का जीवन विचार में पूरा समा नहीं सकता . उनके जीवन का ढंग अमर्यादित है, असीम है—उसकी कहीं सीमा नहीं है . हमारी तो सीमा आ जायेगी और वो हम से कहेंगे और आगे, हमसे कहेंगे और आगे, हमारी तो जगह आ जायेगी, जहां से आगे जाने में खतरा है; पर वो कहेंगे और आगे.

लेकिन कृष्ण इसलिए ही और भी ज्यादा चिंतनीय बन जाते हैं; क्योंकि मेरी दृष्टि में वही चिंतनीय है, जो अंततः चिंतन के पार ले जाय .

चिंतन अंतिम बात नहीं है, चिंतन प्राथमिक चरण है . एक क्षण आना चाहिये जब चिंतन के ऊपर भी उठा जा सके . लेकिन चिंतन के ऊपर वही उठायेगा, जो चिंतन को डगमगा दे और चिंतन के ऊपर वही उठायेगा जो चिंतन को घबड़ा दे और चिंतन के ऊपर वही उठायेगा जो चिंतन में न समाय और चिंतन के बाहर चला जाय . सभी चिंतनीय है . सभी सोचने योग्य है . अनुकरणीय तो सिर्फ आप ही हैं अपने लिये और कोई नहीं है . अपना अनुकरण करें, समझें सबको . अपने पीछे जायें; किसी के पीछे न जायं . समझें सबको, जायें पीछे अपने .

लेकिन भय क्या है ? कृष्ण के साथ सवाल क्यों उठता है ? भय है . और भय यही है कि हमने अपनी जिन्दगी को दमन की, 'सप्रेशन' की जिन्दगी बना रखा है . हमारी जिन्दगी, जिन्दगी कम दबाव ज्यादा है . हमारी जिंदगी खिलापन नहीं है, फ्लावरिंग नहीं है; कुंठा है . इसलिये डर लगता है कि अगर कृष्ण को हमने सोचा भी तो कहीं ऐसा न हो कि जो हमने अपने में दबाया है वो कहीं फूटकर बहने लगे . कहीं ऐसा न हो कि जो हमने अपने में रोका है, उसके रोकने के लिये जो हमने तर्क दिये हैं, वो टूट जायं, वो गिर जायं . कहीं ऐसा न हो कि हमने अपने भीतर हो अपनी बहुत-सी वृत्तिओं को जो कारागृह में डाला है, वो बाहर निकल आयें और वो कहें कि हमें बाहर आने दो . डर भीतर है, घबड़ाहट भीतर है . लेकिन इसके लिये कृष्ण जिम्मेवार नहीं हैं, इसके लिये हम जिम्मेवार हैं . हमने अपने साथ यह दुर्व्यवहार किया है . हमने अपने साथ यह अनाचार किया है . हमने अपने पूरे व्यक्तित्व को कभी न जाना, न स्वीकारा, न जिया . हमने उसमें बहुत कुछ दबाया है और थोड़ा बहुत जीने की कोशिश की है . हम ऐसे लोग हैं जैसे कि सभी लोग होते हैं साधारणतः .

अगर किसी के घर में जायें तो वो अपने बैठकखाने को साज-संवार कर ठीक करके रख देता है . यह ड्राइंगरूम की दुनिया अलग है . लेकिन किसी के ड्राइंगरूम को देखके यह न समझ लेना कि यह उसका घर है . यह उसका घर है ही नहीं, न वो यहां खाना खाता है, न वो यहां सोता है; यहां वो सिर्फ मेहमानों का स्वागत करता है, यह सिर्फ चेहरा है जिसको वो दूसरों को दिखाता है . ड्राइंगरूम घर का हिस्सा नहीं है . ड्राइंगरूम घर से अलग बात है, इसलिये किसी का ड्राइंगरूम देखकर उसके घर का ख्याल मत करना . उसका घर तो वहां है, जहां वो जीता है, सोता है, लड़ता है, झगड़ता है, खाता है, पीता है—वहां उसका घर है . ड्राइंगरूम किसी का भी घर नहीं है . ड्राइंगरूम चेहरा है, 'मास्क' है, जो हम दूसरों को दिखाने के

लिये बनाये हुए हैं, इसलिये ड्राइंगरूम जिंदगी की बात नहीं है . ऐसे ही हमने जिन्दगी के साथ भी किया है . जिन्दगी में हमने ड्राइंगरूम बनाये, हमने चेहरे बनाये हैं जो दूसरों को दिखाने के लिये हैं . वह हमारी असलियतें नहीं हैं . हमारा असली घर भीतर है, अंधेरे में डूबा हुआ, अचेतन में दबा हुआ— उसका हमें कोई पता ही नहीं है . हमने भी उसका पता लेना छोड़ दिया, हम खुद भी डर गये . यानी हम ऐसे आदमी हैं जो खुद भी अपने घर से डर गये और अपने ड्राइंगरूम में रहने लगे और अब खुद भी भीतर जाने में घबड़ाते हैं, तो जिन्दगी उथली हो ही जायेगी . **इससे कृष्ण से डर लगता है, क्योंकि कृष्ण पूरे घर में रहते हैं और उन्होंने पूरे घर को बैठकखाना बना दिया है और वो हर कोने से अतिथि का स्वागत करते हैं** . जहां से भी आओगे, कहते हैं, चलो यहीं बैठो . उनके पास बैठकखाना अलग नहीं है . उनकी पूरी जिन्दगी खुली हुई है . उसमें जो है, वो है . उसका कोई इन्कार नहीं, उसका कोई विरोध नहीं हैं . उसको उनने स्वीकार किया है . हम डरेंगे, हम हैं 'सप्रेसिव,' हम हैं दमनकारी, हमने अपनी जिन्दगी के निन्यानबे प्रतिशत हिस्से को तो अंधेरे में ढकेल दिया है और एक प्रतिशत को जी रहे हैं . निन्यानबे प्रतिशत पूरे धक्के मार रहा है कि मुझे मौका दो जीने का . वो लड़ रहा है, वो संघर्ष कर रहा है, सपने में टूट रहा है, जागने में भी टूट पड़ता है . रोज-रोज टूटता है, हम फिर उसे धक्का देकर पीछे कर आते हैं . जिन्दगी इसी संघर्ष में बीत जाती है . उसको ढांकते हैं, पीछे करते हैं .

अपने से ही लड़ने में आदमी हार जाता है और समाप्त हो जाता है . इससे डर है कि अगर कृष्ण को समझा—यह बिना बैठकखाने का आदमी, यह बिना चेहरे का आदमी, इसकी पूरी जिन्दगी एक जैसी है, सब तरफ से द्वार खोल रखे हैं उसने, कहीं से भी आओ स्वागत है, कुछ दबाया नहीं है, अंधेरे को भी स्वीकार करता है और उजाले को भी स्वीकार करता है— कहीं इसे देखकर हमारी आत्मा बगावत न कर दे हमारे दमन से . कहीं हम ही अपने खिलाफ बगावत न कर दें, वो जो हमने इन्तजाम किया है, कहीं टूट न जाय, इसलिए डर है . लेकिन यह डर भी विचारना, कृष्ण के कारण नहीं है; यह हम जिस ढंग से जी रहे हैं उसके कारण है; क्योंकि अगर सीधा साफ आदमी है और जिन्दगी को सरलता से जीता है, वो कृष्ण से नहीं डरेगा । डरने का कोई कारण नहीं है . जिन्दगी में अगर कुछ भी नहीं दबाया है, कृष्ण से नहीं डरेगा . डरने का कोई कारण नहीं है . हमारे डर को ही हमें समझना चाहिये कि हम क्यों डर रहे हैं ? और अगर हम डर

रहे हैं तो यह हमारी रुग्ण अवस्था है, यह हम बीमार हैं; यह हम विक्षिप्त हैं . और हमें इस स्थिति को बदलने की कोशिश करनी चाहिये .

इसलिये कृष्ण तो बहुत विचारणीय हैं . लेकिन हम कहेंगे कि हम तो अच्छी-अच्छी बातों पर विचार करते हैं; क्योंकि अच्छी-अच्छी बातें हमें अपने को दबाने में सहयोगी बनती है . हम तो बुद्ध का वचन पढ़ते हैं, जिसमें कहा है कि क्रोध मत करना . हम तो जीसस का वचन पढ़ते हैं, जिसमें कहा है कि शत्रुओं को प्रेम करना . हम कृष्ण से तो डरते हैं . यह डर—इस डर का तीर किस तरफ है, कृष्ण की तरफ कि अपनी तरफ ? और अगर कृष्ण से डर लगता है तब तो बड़ा अच्छा है, कृष्ण आपके काम पड़ सकते हैं . वो आपको खोलने में, उघाड़ने में, आपको नग्न करने में, आपको स्पष्ट और सीधा करने में काम पड़ सकते हैं . उनका उपयोग कर लें . उनको आने दें, उनको विचारें, बचें मत, भागें मत, उनके आमने-सामने खड़े हो जायें, 'एन्काउन्टर' होने दें—यह मुठ-भेड़ अच्छी होगी . इसमें अनुकरण नहीं करना है उनका, इसमें समझना ही है उनको . उनको समझने में ही आप अपने को समझने में बड़े सफल हो जायेंगे . उनको समझते-समझते ही आप अपने को भी समझ पायेंगे . उनको समझते-समझते ही हो सकता है आप खुद अपने को समझने में अद्‌भुत साक्षात्कार को उपलब्ध हो जायें और जान पायें कि यह तो मैं भी हूं . यही तो मैं हूं .

एक मित्र मेरे पास आये और उन्होंने कहा—"कृष्ण की सोलह हजार स्त्रियां थी . क्या आप इसमें भरोसा करते हैं ?" मैंने कहा कि छोड़ो उसको, मैं तुमसे पूछता हूं, तुम्हारे मन में सोलह हजार से कम स्त्रियां तृप्ति दे सकती हैं ? उन्होंने कहा—"क्या कहते हैं आप ?" मैंने कहा—"कृष्ण की सोलह हजार स्त्रियां थीं या नहीं यह सवाल बड़ा नहीं है; कोई पुरुष सोलह हजार स्त्रियों से कम पर राजी नहीं है . कृष्ण की सोलह हजार स्त्रियां थीं, अगर ऐसा पक्का हो जाय, तो हमारे भीतर का जो पुरुष है वो घोषणा करेगा, तो फिर देर क्यों कर रहे हो ! उससे हमें डर है . वो भीतर बैठा हुआ पुरुष हमें डरा रहा है, लेकिन उससे डरकर, भागकर, बचकर कुछ भी हो नहीं सकता . उसका सामना करना पड़ेगा, समझना पड़ेगा ."

●

नोट : गत 'जन्म-दिवस विशेषांक' १९७१ के आवरण पृष्ठ के छायाकार श्री कामता सागर थे . यह सूचना विस्मृति-वश न दे सकने का हमें खेद है . —संपादक

भगवान श्री रजनीश के
अमृत सान्निध्य में

माऊंट आबू साधना शिविर

दिनांक २५ मार्च से २ अप्रैल '७२ तक

(विषय : कैवल्य उपनिषद् पर प्रवचन, ध्यान योग साधना, प्रभु कृपा चिकित्सा एवं कीर्तन के कार्यक्रम)

संयोजक : **जीवन जागृति केन्द्र परिवार,**

म्यु० स्कूल के सामने

खाडिया चार रास्ता, अहमदाबाद-१ (फोन : 24083.)

महत्वपूर्ण सूचना

भगवान श्री के सान्निध्य में आयोजित माथेरान साधना शिविर (जनवरी ७२) की डाक्युमेंटरी न्यूज रील फरवरी के चौथे सप्ताह में या मार्च महीने में देश के प्रथम श्रेणी के सिनेमा-गृहों में दिखाई जावेगी .

संन्यास – संन्यास – संन्यास

अंतर्राष्ट्रीय क्षेत्र में भगवान श्री रजनीश के आध्यात्मिक चिन्तन और विचारों की क्रांति के लिए --

अंग्रेजी–द्विमासिक

संन्यास (SANNYAS)

कलात्मक साज-सज्जा, संग्रहणीय पाठ्य सामग्री

वार्षिक शुल्क : १८ रु०

प्रकाशक : **जीवन जागृति केन्द्र,**

३१, इजरायल मोहल्ला, भगवान भुवन, मस्जिद बंदर रोड, **बम्बई : ९**

PHONE : 327618

तुलसी मानस प्रकाशन की उपलब्धियां

हरिकिशनदास अग्रवाल द्वारा लिखित

संक्षिप्तरूप में आधुनिक ढंग से आध्यात्मिकता की ओर प्रेरित करने वाली जीवनोपयोगी पुस्तकें

१. संसार का सार (हिन्दी में) : ३–००

आधुनिक खेलों, वैज्ञानिक साधनों, जीव-जन्तुओं, वनस्पतियों के द्वारा आध्यात्म शिक्षा ।

२. ज्ञान-साधना : २–००

लोनावाला शिविर में पधारे हुए महापुरुषों के ज्ञान साधना के प्रति संकेत ।

३. विज्ञान से ज्ञान : १–००

एक्स-रे इत्यादि आधुनिक उदाहरणों को लेकर आध्यात्मिक विद्या नवयुवकों तक पहुंचाने का सफल प्रयास ।

४. वेदान्त-नवनीत : १–५०

सन् १९६४ के अमृतसर के वेदान्त सम्मेलन में पधारे महात्माओं के प्रवचनों का सार ।

५. वेदान्त का सरल बोध : २–००

वेदान्त के क्लिष्ट ग्रन्थों के सिद्धांत बड़े ही सरल उदाहरणों में ।

६. आध्यात्मिक पिक्टोरियल (हिन्दी व अंग्रेजी) : ४–००

ज्ञान की गंभीर बातों को सूत्र तथा चित्र द्वारा प्रस्तुत ।

७. आध्यात्मिक डायरी १९७१ ६–००

सचित्र और दार्शनिक सूत्रों से परिपूर्ण दैनंदिनी ।

८. आध्यात्मिक चित्रावली (हिन्दी-इंग्लिश) पाकेट बुक : ६–००

२५० पृष्ठों में रंगीन ब्लैक एंड ह्वाइट चित्र इंग्लिश तथा हिन्दी में सूत्रों सहित सर्वसाधारण के लिए आध्यात्मिक ज्ञान ।

९. मुमुक्षु : ५–००

आधुनिक मनोरंजक आध्यात्मिक उपन्यास ।

१०. मन की शांति (पद्य) : ४–००

अंग्रेजी मूल रचना 'पीस ऑफ माइंड' का हिन्दी अनुवाद ।

११. हमारी परंपरा : २–००

क्रिकेट और ताश के पत्ते आदि दृष्टांतों द्वारा अध्यात्म की नवयुवकों तक पहुंच ।

१२. **आराम सुख शाँति और आनन्द :** ०–५०
जैसा नाम तैसा गुण ।

१३. **अपनी ओर इशारा :** १–००
अपनी ओर आने के सूत्र रूप इशारे ।

१४. **व्यावहारिक जीवन और परमात्मा :** १–००
व्यवहार परमात्ममिलन में बाधक नहीं, इसकी स्पष्टता ।

१५. **श्मशान यात्रा :** ०–५०
जीवन यात्रा का अंतिम चरण ।

१६. **मेरे १०८ गुरु:** ३–००
क्षण-क्षण व कण-कण से नूतन ज्ञान ।

१७. **सजगता :** १–००
पल-पल अविरल वर्तमान में सजग जीवन ।

१८. **अविरोध-निरोध और स्वबोध :** २–००
अविरोध से मन का निरोध और निरुद्ध मनमें में स्वबोध ।

१९. **वेदान्त का वैज्ञानिक मनन :** २–००
वैज्ञानिक दृष्टांतों द्वारा वेदान्त का मनन ।

२०. **चिन्ता और निश्चिंतता : (प्रेस में)** २–००
चिन्ता से पार उतरने के सरल सूत्र ।

२१. **मन के पार :** १–००
विकट सामाजिक धार्मिक और आध्यात्मिक प्रश्नों पर
आचार्य श्री रजनीश के उत्तर ।

२२. **घर-घर की समस्या : (प्रेस में)** २–००
घरेलू दैनिक विकट समस्याओं का समाधान ।

२३. **'पीस ऑफ माइण्ड'** ३–००
अंग्रेजी में सूत्ररूप आध्यात्मिक सरल ज्ञान ।

२४. **'क्वायटर मोमेण्ट्स'** २–००
मौन के क्षणों में लिखे सूत्र रूप अंग्रेजी-सूक्त ।

(ग्राहक एवं एजेन्टस् पत्र-व्यवहार करें)

:-: तुलसी–मानस–प्रकाशन :-:

अन्तर्गत विभाग केबल मार्केटिंग कम्पनी

गुप्ता मिल्स स्टेट, रे रोड, बम्बई-१०

मंडली के सदस्य :

मा आनंद मधु	:	गाँधी जी की जीवन-धारणाओं में पली अहमदाबाद के समीप अजोल में गर्ल्स एजुकेशनल संस्थाओं, संस्कार-तीर्थ तथा विश्वनीड़ की संस्थापिका तथा भूतपूर्व उप-प्रधान मंत्री श्री मोरारजी भाई की भतीजी जो मंडली का नेतृत्व कर रही हैं .
स्वामी चैतन्य भारती	:	दिल्ली के प्रबुद्ध युवा चित्रकार जो संकीर्तन मंडली के प्रमुख हैं ।
,, चैतन्य कीर्ति	:	पानीपत, हरियाणा
,, वैराग्य अमृत	:	गाडरवारा, मध्यप्रदेश
,, आनंद संत	:	अमृतसर, पंजाब
मा योग प्रिया	:	पूना, महाराष्ट्र
,, ,, कृपा	:	जबलपुर, मध्यप्रदेश
,, ,, प्रतिभा	:	आजोल, गुजरात
,, ,, आस्था	:	अमेरिका
स्वामी अमृत पथिक	:	न्यूयार्क, अमेरिका
,, योग समर्पण	:	इंग्लेंड
,, मंगल तीर्थ	:	इटली

मुख पृष्ठ के छायाकार : अशोक कबरा

कौन रजनीश रूप में आये हैं !

सोचते रहेंगे सोचने वाले, कौन रजनीश रूप में आये हैं !
दुख से भरी इस दुनिया में जो, आनंद ही आनंद लाये हैं ! !

लोग तो देखते रह जायेंगे, जन्म गवांकर जायेंगे
साधक पाकर करुणा उनकी, भव-सागर तर जायेंगे

क्या जायें काशी क्या काबा, अंतर-तीरथ जायेंगे
ध्यान में डूब जा रे ! मन मूरख, तब ही कुछ हम पायेंगे

कहत 'कबीर' सुनो भाई साधक, हम सब मुक्ती पायेंगे
'नीश में रामा-कृष्णा प्रगटे, 'नीश के ही गुण गायेंगे

—स्वामी कृष्ण कबीर,
बम्बई .

युक्रांद

फरवरी १९७२